Ph.D. Thesis

हिन्दी का यात्रा साहित्य - राहुल सांकृत्यायन के विशेष सन्दर्भ में

(HINDI KA YATHRA SAHITYA - RAHUL SANKRITYAYAN KE VISESH SANDARBH MEIN)

By

Remya K R

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi - 22
June 2010

हिन्दी का यात्रा साहित्य - राहुल सांकृत्यायन के विशेष सन्दर्भ में

(HINDI KA YATHRA SAHITYA - RAHUL SANKRITYAYAN KE VISESH SANDARBH MEIN)

Thesis submitted to

Cochin University of Science and Technology

for the award of the degree of

Doctor of Philosophy

By

Remya.K.R.

Department of Hindi

Cochin University of Science and Technology

Kochi-22

June 2010.

HINDI KA YATHRA SAHITYA - RAHUL SANKRITYAYAN KE VISESH SANDARBH MEIN
Ph.D thesis (Hindi) in the field of travelogue

Author
Remya.K.R.
Research scholar, Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology, Kochi-22.

Research Advisor
Dr.N.G. Devaki
Professor, Department of Hindi
Cochin Universiry of Science and Technology, Kochi-22

Cover Design and Layout
Peter

Department of Hindi, Cochin University of science and Technology,
Kochi-22
www.cusat.ac.in

June 2010.

प्रिय पति सजीव को
सप्रेम समर्पित.....

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **"Hindi Ka Yathra Sahitya - Rahul Sankrityayan ke Visesh Sandarbh mein"** is outcome of the original work done by me, and the work did not form part of any dissertation submitted for the award of any degree, diploma, associateship or any other title or recognition.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi - 22.

Remya.K.R.
Research Scholar

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

CERTIFICATE

This is to certify that to the best of my knowledge this thesis entitled **"Hindi Ka Yathra Sahitya-Rahul Sankrityayan ke Visesh Sandarbh mein"** is a bonafide record of research carried out by **Smt.Remya K.R.** under my supervision.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi - 22.

Dr.N.G.Devaki
Supervising Teacher

"यात्रा ने ही मेरे हाथ में जबर्दस्ती कलम पकड़ा दी और स्वयं ही लेखन-शैली बनती गई। कलम के दरवाजे को खोलने का काम मेरे लिए यात्राओं ने ही किया, इसलिए मैं इनका बहुत कृतज्ञ हूँ।"

- राहुल सांकृत्यायन; 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में'

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा संपन्न की गयी यात्रा का मानचित्र

1. लद्दाख
2. लंका
3. तिब्बत
4. यूरोप
5. जापान
6. तिब्बत
7. तिब्बत
8. तिब्बत
9. राजस्थान
10. इरान
11. सोवियत राज्य
12. अफगानिस्तान
13. सोवियत राज्य
14. रूस
15. किन्नर देश
16. दार्जिलिंङ्
17. गढ़वाल
18. देहरादून
19. कुमाऊँ
20. चीन

Russia
Kazakhstan
Mongolia
China
India
Pakistan
Afghanistan
Iran
Uzbekistan
Turkmenistan
Kyrgyzstan
Tadschikistan
Georgia
Azer-baijan
Kashmir
Tibet
Nepal
Korea
South Korea
Japan
East Sea (Sea of Japan)
Caspian Sea
Lake Aral
Lake Baikal
Lena
Jenissej
Brahmaputra
Jangtsekiang
Europe
RB-DESKKART
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20

शोधार्थिनी की प्रकाशित रचनाएँ

1. “दिनकर का यात्रा साहित्य: ‘देश-विदेश’ के विशेष सन्दर्भ में”; अनुशीलन: दिनकर विशेषांक जनवरी 2009; हिन्दी विभाग, कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची- 22, पृष्ठ: 175-178

2. “राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य - ‘किन्नर देश में’ - में प्रतिबिम्बित भारतीयता के विविध आयाम”; संग्रथन: जून 2009; हिन्दी विद्यापीठ (केरल), तिरुवनन्तपुरम; पृष्ठ: 28-29

3. “प्रगतिवादी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर - त्रिलोचन के विशेष सन्दर्भ में”; अनुशीलन; त्रिलोचन विशेषांक जुलाई 2009; हिन्दी विभाग, कोच्ची विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची - 22; पृष्ठ: 79-85

भूमिका

यात्रा साहित्य यायावर की रागात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करने का सुन्दर दर्पण है। यात्रा मानव जीवन की अनिवार्य प्रक्रिया है। मानव-जाति का संपूर्ण विकास यात्रा का ही परिणाम है। परिवर्तन मनुष्य के जीवन में नवीन उत्साह पैदा करते हैं। प्रकृति की गोद में जन्मे और पले मानव में उस प्रकृति के प्रति रागात्मक भाव उत्पन्न होता है। सौन्दर्यात्मक दृष्टि से यात्रा करनेवाले यायावर की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को जब साहित्यिक रूप दिया जाता है तब यात्रा साहित्य विधा रूपायित होती है। यद्यपि हिन्दी में यात्रा साहित्य एक स्वतन्त्र विधा का रूप ले चुका है तथापि इस साहित्य का सही मूल्यान्वेषण आज तक नहीं हो सका है। हिन्दी यात्रा साहित्य का अध्ययन करने पर ऐसा लगता है कि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ही उनमें अप्रतिम स्थान के अधिकारी हैं। इस शोधकार्य के पूर्व ही राहुलजी की कई महत्त्वपूर्ण किताबों को पुस्तकालयों से लेकर पढा था, हालांकि कम समझ सका था। एम.ए. के पाठ्यक्रम में 'किन्नर देश में' नामक यात्रा विवरण पढ़ते-पढ़ते राहुल सांकृत्यायन के समग्र यात्रा साहित्य के विशेष अध्ययन की रुचि मन में जगी। राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों एवं कहानियों पर केन्द्रित शोध कार्य तो संपन्न हो चुका है। उनके यात्रा साहित्य विषयक शोध कार्य के अभाव ने शोधार्थिनी को प्रस्तुत विषय पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया और प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय रखा गया - **'हिन्दी का यात्रा साहित्य - राहुल सांकृत्यायन के विशेष सन्दर्भ में।'** प्रस्तुत शोधकार्य इस दिशा में पहला मौलिक प्रयास है।

विश्व के महान घुमक्कडों में एक होने पर भी उनके यात्रा साहित्य

उपलब्ध कराने के लिए शोधार्थिनी को कठिन प्रयत्न करना पडा। देशभर के विभिन्न प्रकाशकों से संपर्क किया। कहीं से भी कुछ दुर्लभ मूल सामग्री प्राप्त नहीं हुई तो राहुल सांकृत्यायन की पत्नी कमलाजी से पत्र व्यवहार की। उनका पत्रोत्तर इस प्रबन्ध के अन्त में परिशिष्ट के साथ संलग्न है। सामग्री संकलनार्थ शोधार्थिनी को कोलकत्ता की यात्रा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उस यात्रा का संक्षिप्त रूप भी इस शोध प्रबन्ध के अन्त में 'मेरी शोध यात्रा' शीर्षक से परिशिष्ट के साथ संलग्न है। कोलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय, बड़ाबाज़ार लाइब्रेरी, कुमारसभा लाइब्रेरी तथा राम मन्दिर लाइब्रेरी में जाने का सुयोग शोधार्थिनी को प्राप्त हुआ। इन पुस्तकालयों के प्रति शोधार्थिनी आभारी है जहाँ से शोध कार्य के लिए अन्यत्र आप्राप्त कई मूल ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। राहुल कृत 'जौनसार देहरादून','चीन के कम्यून', 'चीन में क्या देखा' और 'तिब्बत में सवा वर्ष' को पढ़ने का सुअवसर राष्ट्रीय पुस्तकालय के कर्मचारियों ने प्रदान किया। 'लंका', 'जापान', 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'मेरी यूरोप यात्रा', दोर्जेलिंङ् परिचय 'और 'कुमाऊँ' जैसी कृतियाँ बड़ा बाज़ार पुस्तकालय से प्राप्त हुआ। 'मेरी लद्दाख यात्रा' तथा 'इरान' राम मन्दिर पुस्तकालय के कर्मचारियों के सहयोग से उपलब्ध हुए हैं। इस अवसर पर केरल विश्वविद्यालय के पुस्तकालय तथा पब्लिक लाइब्रेरी, तिरुवनन्तपुरम के प्रति भी शोधार्थिनी आभारी है जहाँ से 'सोवियत भूमि','रूस में पच्चीस मास' तथा 'गढ़वाल' जैसी बहुमूल्य पुस्तकें प्राप्त हुई हैं।

इस प्रकार यात्रा साहित्य विधा तथा राहुलजी के यात्रा साहित्य के विविध पहलुओं की समीक्षा के लिए शोधार्थिनी को अपने विश्वविद्यालय के बाहर यात्रा करनी पडी, जिससे अध्ययन की विशेष दृष्टि प्राप्त हुई। यात्रा साहित्य का महत्त्व एवं हिन्दी यात्रा साहित्य के विकास का संक्षिप्त रूप में उल्लेख करके हिन्दी यात्रा साहित्य के लिए राहुलजी के योगदान का

मूल्यांकन इस शोध प्रबन्ध का लक्ष्य है। प्रस्तुत अध्ययन को निम्नांकित पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

पहला अध्याय - हिन्दी में यात्रा साहित्य का स्वरूप।

दूसरा अध्याय - राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य का स्वरूप विवेचन।

तीसरा अध्याय - राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित विभिन्न परिस्थितियाँ ।

चौथा अध्याय- राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।

पाँचवाँ अध्याय- राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में लेखकीय व्यक्तित्व और रचना शैली।

पहला अध्याय हिन्दी यात्रा साहित्य के विकास से सम्बन्धित है। इसमें यात्रा की आवश्यकता एवं यात्रा साहित्य के महत्त्व पर विचार करने के साथ ही यात्रा साहित्य का लेखकीय व्यक्तित्व के साथ जो सम्बन्ध है उस पर भी प्रकाश डाला गया है। सामान्य भौगोलिक विवरण से यात्रा साहित्य को पृथक करके साहित्यिक रूप प्रदान करने में लेखक का यह व्यक्तित्व पक्ष अत्यन्त सहायक है। निबन्ध, संस्मरण, आत्मकथा जैसी कुछ विधाओं से यात्रा साहित्य का जो सम्बन्ध है उस पर भी विचार किया गया है, साथ ही देशगत एवं वर्ण्य विषय के आधार पर यात्रा साहित्य का विभाजन भी प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को केन्द्र में रखकर हिन्दी यात्रा साहित्य को तीन सोपानों में विभक्त किया गया है - राहुल सांकृत्यायन के पूर्ववर्ती यात्रा साहित्य, राहुल सांकृत्यायन के समकालीन यात्रा साहित्य और राहुल सांकृत्यायन के परवर्ती यात्रा साहित्य

दूसरे अध्याय में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के संपूर्ण यात्रा साहित्य का संक्षिप्त परिचय है। देशगत आधार पर राहुलजी के यात्रा साहित्य को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया गया है - भारत, तिब्बत,

सोवियत, चीन तथा अन्य विदेशी यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य। भारतीय यात्राओं के अन्तर्गत मुख्य रूप से हिमालय यात्राएँ आती हैं। 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'किन्नर देश में', 'दोर्जेलिंङ् परिचय', 'गढ़वाल', 'जौनसार देहरादून', 'कुमाऊँ', 'हिमाचल' जैसे ग्रन्थ इसके अन्तर्गत आते हैं। 'तिब्बत में सवा वर्ष', 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'यात्रा के पन्ने', 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों' में आदि उनकी तिब्बत यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य हैं। सोवियत यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य के अन्तर्गत 'सोवियत भूमि', 'सोवियत मध्य एशिया' और 'रूस में पच्चीस मास' को रखा गया है। 'लंका', 'मेरी यूरोप यात्रा', 'जापान' और 'इरान' उनके विभिन्न विदेशी यात्राओं का साहित्य है। इन यात्रापरक कृतियों में विभिन्न देशों की भौगोलिक स्थिति एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ वहाँ की संस्कृति, कला, इतिहास, पुरातत्व आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इन सभी दृष्टियों से राहुलजी के संपूर्ण यात्रा साहित्य का अध्ययन-विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है।

तीसरे अध्याय में विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर राहुलजी के यात्रा साहित्य का विश्लेषण किया गया है। उनकी यात्रापरक कृतियों में यात्रा के रोचक दृश्यों के साथ उन प्रदेशों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक स्थितियों का विस्तृत परिचय भी उपलब्ध है। देश-कालक्रमानुसार इन परिस्थितियों में जो भिन्नता दिखाई पडती है उसका भी विस्तार से विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का चौथा अध्याय राहुलजी के यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। भारीतय यात्राओं से सम्बन्धित कृतियों में भारतीय संस्कृति मुखरित है तो अन्य यात्रापरक कृतियों में विभिन्न देशों की संस्कृति का विवरण है। हिमालय सम्बन्धी यात्रा वर्णनों में लोक गीत, लोक भाषा, पार्वत्य उत्सव आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस अध्याय में मुख्यत: लोक संस्कृति, भारतीय संस्कृति तथा

विदेशी संस्कृति का विस्तार से वर्णन उपलब्ध है।

पाँचवाँ अध्याय राहुलजी के लेखकीय व्यक्तित्व एवं रचनाशैली पर आधारित है। यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित राहुलजी के लेखकीय व्यक्तित्व के मुख्यत: पाँच रूप हैं - यायावरी वृत्ति, इतिहास बोध, आर्य समाजी व्यक्तित्व, बौद्ध दर्शन की अभिरुचि एवं साम्यवादी जीवन दर्शन। राहुल साहित्य की केन्द्रीय शक्ति उनकी यायावरी वृत्ति है। उनके यात्रा साहित्य में स्वच्छन्द प्रवाहमयता एवं अद्‌भुत अनासक्ति है। यह उनकी यायावरी वृत्ति का प्रतिफल है। लेखकीय व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विस्तार से विश्लेषण करने के साथ उनके यात्रा साहित्य की भाषा एवं शैली का विवेचन भी इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

उपसंहार के रूप में इस शोधकार्य के निष्कर्षों एवं सुझावों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

शोध प्रबन्ध के अन्त में परिशिष्ट हैं जिसके तीन भाग हैं। पहले भाग में डॉ.कमला सांकृत्यायन से संपर्क करते समय प्राप्त पत्र संलग्न हैं। परिशिष्ट के दूसरे भाग में शोधार्थिनी द्वारा सामग्री संकलनार्थ की गयी यात्रा का संक्षिप्त रूप 'मेरी शोधयात्रा' शीर्षक से संलग्न है। इसके साथ राहुलजी की साहित्यिक प्रतिभा को मुखरित करनेवाले अन्य पक्षों को सम्मिलित किया गया है। ऐसे चार भाग हैं -(क) राहुलजी का रचना-संसार (ख) राहुल सांकृत्यायन को प्राप्त सम्मान एवं उपाधियाँ (ग) राहुल सांकृत्यायन द्वारा पटना संग्रहालय को प्रदत्त सामग्री (घ) राहुलजी पर एक दुर्लभ कविता। 'राहुलजी का रचना-संसार' शीर्षक भाग में उनकी संपूर्ण रचनाओं का उल्लेख हुआ है। राहुल सांकृत्यायन को प्राप्त सम्मान एवं उपाधियाँ इसके दूसरे भाग के रूप में गिए गए हैं। इसका तीसरा और चौथा भाग डॉ.अभिजीत भट्‌टाचार्य की रचना 'महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्वांतरण की प्रक्रिया' के आधार पर लिखा हुआ है। इसमें राहुलजी द्वारा पटना संग्रहालय को प्रदत्त सामग्रियों का उल्लेख है साथ ही

प्रो.श्री मनोरंजन द्वारा राहुलजी पर रचित 'राहुल का खून पुकार रहा' शीर्षक दुर्लभ कविता का उल्लेख भी है।

अन्त में शोध की वैज्ञानिक प्रणाली (पंचसूत्री-क्रम) के अनुसार सहायक ग्रन्थ-सूची प्रस्तुत की गई है।

शोध कार्य पूरा करते हुए शोधार्थिनी को विशेष सन्तोष का अनुभव हो रहा है। हिन्दी यात्रा साहित्य तथा राहुल सांकृत्यायन की यायावरी वृत्ति में रुचि रखनेवाले अध्योताओं के लिए प्रस्तुत शोधकार्य प्रयोजनीय हो सकता है। हिन्दीतर भाषी हिन्दी शोध छात्रा के नाते प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में यदि कहीं त्रुटियाँ या कमियाँ आ गई हैं तो शोधार्थिनी उसके लिए क्षमाप्रार्थी है।

विनम्र

कोच्चि - 22 **रम्या. के.आर**

2 -06-2010

कृतज्ञता ज्ञापन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्रो. एन.जी.देवकी जी के सुयोग्य निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। शोध प्रबन्ध की रूपरेखा से लेकर शोधकार्य की परिसमाप्ति तक उनके सत्परामर्शों से मैं लाभान्वित हुई हूँ। उनके पाण्डित्यपूर्ण निर्देशन एवं अनुग्रह के बिना इस अनुष्ठान की पूर्ति सम्भव न थी। उनके प्रति शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित करना असंभव है। उनका स्नेह और वात्सल्य हमेशा मुझे प्राप्त होता रहा। मैं बडी विनम्रता के साथ उनका चरण स्पर्श करती हूँ।

हिन्दी विभाग की प्रोफेसर एवं भूतपूर्व अध्यक्षा षमीम् अलियार जी के प्रति भी मैं आभारी हूँ। वे इस शोधकार्य के विषय विशेषज्ञ हैं। उन्होंने समय-समय पर महत्त्वपूर्ण सुझावें दिए हैं।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. एन मोहनन जी तथा अन्य अध्यापकों के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ, जिनसे समय-समय पर बहुमूल्य परामर्श प्राप्त होते रहे हैं।

हिन्दी विभाग के पुस्तकालय तथा कार्यालय के कर्मचारियों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने इस शोधकार्य को सुगम बनाने के लिए काफी मदद की है।

अभिन्न मित्र विवेक.एस.नायर को मैं कभी भूल नहीं पाऊँगी जिन्होंने

राहुलजी के बहुमूल्य पुस्तकों को उपलब्ध कराने में मेरी सहायता की, साथ ही श्रीकुमारजी (अध्यापक, एस.एस.वी.कॉलेज, वलयनचिरंङ्ग्रा), पद्मकुमार जी (पुस्तकालयाध्यक्ष, हिन्दी विभाग) तथा सुजिताजी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने शोध के प्रारम्भिक काल में सामग्री संकलनार्थ काफी मदद की थी। केरल विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, पब्लिक लाइब्रेरी तथा तिरुवनन्तपुरम के अन्य पुस्तकालयों में सामग्री संकलनार्थ जाने के लिए इन लोगों ने बहुत सहायता की। आप लोगों के उपकार से उऋण नहीं हो सकती।

शोधार्थिनी को सामग्री संकलनार्थ कोलकत्ता जाना पडा। मित्र बिनोईजी, अत्तनुजी और शन्तनुजी को मैं कभी नहीं भूल पाऊँगी, जिन्होंने इस यात्रा के लिए काफी मदद की थी। आप लोगों को इस समय कृतज्ञता के साथ स्मरण करती हूँ। देवराजनजी तथा पी.टी.नायरजी से भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने राष्ट्रीय पुस्तकालय के सदस्य बनाने के लिए मेरी सहायता की। 'आजकल' के संवाददाता बिब्लब गुप्ता से भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने ही बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी, कुमार सभा लाइब्रेरी तथा राम मंदिर लाइब्रेरी की जानकारी हमें दी। इन सभी पुस्तकालयों के कर्मचारियों के प्रति भी मैं इस समय कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने अपनी बहुमूल्य पुस्तकें मुझे पढ़ने के लिए दिए।

मैं अपने सभी मित्रों के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने इस शोध कार्य को संपन्न कराने में हमेशा साथ दिया। मायालक्ष्मी, सूर्या, दीप्ती, जीतू, अञ्जली, वीणा सभी को इस अवसर पर स्मरण कर रही हूँ। अम्बिलीजी तथा नरम्मताजी से भी मैं आभारी हूँ , जिन्होंने राहुल सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ दी है।

मेरे प्रिय माताजी, पिताजी, सासजी एवं ससुरजी को इस अवसर पर आभार प्रकट करती हूँ जिनका स्नेह और आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ रहे।

इनके अलावा अन्य सारे बन्धुजनों को भी याद करती हूँ जो समय-समय पर प्रोत्साहित करते रहे।

शोध को सही समय पर पूरा करने में टंकक श्रीमती जयन्तीजी ने बहुत सहायता की। उनके प्रति मैं आभारी हूँ।

अब मैं अपने प्रिय पति एम.एस.सजीव के प्रति अपना विशेष आभार प्रकट करना चाहती हूँ, जिनकी प्रेरणाओं, प्रोत्साहनों और निरन्तर सहयोगों के बिना मैं वह न हो पाती, जोकि आज मैं इस स्थिति में हूँ। यह शोध प्रबन्ध आपके लिए ही समर्पित .....

कोच्चि- 22 **रम्या.के.आर**

2 .06.2010

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1 - 36

हिन्दी में यात्रा साहित्य का स्वरूप

1.1 यात्रा का तात्पर्य और यात्रा साहित्य का महत्त्व

1.2 यात्रा साहित्य का लेखकीय व्यक्तित्व के साथ सम्बन्ध

1.3 यात्रा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं से सम्बन्ध

1.3.1 यात्रा साहित्य तथा निबन्ध

1.3.2 यात्रा साहित्य और आत्मकथा

1.3.3 यात्रा साहित्य और रेखाचित्र

1.3.4 यात्रा साहित्य और संस्मरण

1.3.5 यात्रा साहित्य और रिपोर्ताज

1.3.6 यात्रा साहित्य और डायरी साहित्य

1.3.7 यात्रा साहित्य तथा पत्र साहित्य

1.4 यात्रा साहित्य के प्रकार

1.4.1 विषय के आधार पर

1.4.1.1 वर्णनात्मक यात्रा साहित्य

1.4.1.2 प्राकृतिक सौन्दर्य प्रधान यात्रा साहित्य

1.4.1.3 लेखकीय व्यक्तित्व प्रधान यात्रा साहित्य

1.4.2 देशगत आधार पर

1.4.2.1 स्वदेश-यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

1.4.2.2 विदेश-यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य
1.5 हिन्दी का यात्रा साहित्य
1.5.1 राहुल सांकृत्यायन के पूर्ववर्ती यात्रा साहित्य
1.5.2 राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य
1.5.3 राहुल सांकृत्यायन के परवर्ती यात्रा साहित्य
1.6 निष्कर्ष
दूसरा अध्याय 37 - 64
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य का स्वरूप विवेचन
2.1 भारतीय यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य
2.1.1 मेरी लद्दाख यात्रा
2.1.2 किन्नर देश में
2.1.3 दोर्जेलिंङ् परिचय
2.1.4 गढ़वाल
2.1.5 जौनसार देहरादून
2.1.6 कुमाऊँ
2.1.7 हिमाचल
2.2 तिब्बती यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य
2.2.1 तिब्बत में सवा वर्ष
2.2.2 मेरी तिब्बत यात्रा
2.2.3 यात्रा के पन्ने
2.2.4 एशिया के दुर्गम भूखण्डों में
2.3 सोवियत यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य
2.3.1 सोवियत भूमि
2.3.2 सोवियत मध्य एशिया

2.3.3 रूस में पच्चीस मास
2.4 चीन यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा-साहित्य
2.4.1 चीन में क्या देखा
2.4.2 चीन के कम्यून
2.5 अन्य विदेशी यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा-साहित्य
2.5.1 लंका
2.5.2 मेरी यूरोप यात्रा
2.5.3 जापान
2.5.4 इरान
2.6 निष्कर्ष
तीसरा अध्याय 65 - 90
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित विभिन्न परिस्थितियाँ
3.1 सामाजिक परिस्थिति
3.2 धार्मिक परिस्थिति
3.3 सांस्कृतिक परिस्थिति
3.4 आर्थिक परिस्थिति
3.5 राजनीतिक परिस्थिति
3.6 साहित्यिक परिस्थिति
3.7 निष्कर्ष
चौथा अध्याय 91 - 110
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
4.1 लोक संस्कृति का स्वरूप
4.2 भारतीय संस्कृति का स्वरूप
4.2.1 जाति एवं वर्ग

4.2.2 खान - पान
4.2.3 वेश - भूषा
4.2.4 नारी समाज
4.2.5 कलाएँ
4.3 विदेशी संस्कृति का स्वरूप
4.3.1 जाति एवं वर्ग
4.3.2 खान - पान
4.3.3 वेश - भूषा
4.3.4 आवास
4.3.5 नारी समाज
4.3.6 कलाएँ
4.4 निष्कर्ष
पाँचवाँ अध्याय 111 - 134
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में लेखकीय व्यक्तित्व और रचनाशैली
5.1 यायावरी वृत्ति
5.2 इतिहास बोध
5.3 आर्य समाजी व्यक्तित्व
5.4 बौद्ध दर्शन की अभिरुचि
5.5 साम्यवादी जीवन दर्शन
5.6 राहुलजी के यात्रा साहित्य की लेखन-शैली
5.6.1 इतिवृत्तात्मक शैली
5.6.2 भावात्मक शैली
5.6.3 चित्रात्मक शैली
5.6.4 अलंकृत शैली

5.6.5 दार्शनिक शैली
5.6.6 व्यंग्यात्मक शैली
5.6.7 पत्र शैली
5.6.8 डायरी शैली
5.7 निष्कर्ष
उपसंहार 135 - 140
परिशिष्ट 141 - 169
एक श्रीमती डॉ कमला सांकृत्यायन द्वारा शोधार्थिनी के नाम पत्र
दो मेरी शोध यात्रा (शोधार्थिनी द्वारा सामग्री संकलनार्थ की गई यात्रा)
तीन (क) राहुलजी का रचना-संसार
(ख) राहुल सांकृत्यायन को प्राप्त सम्मान एवं उपाधियाँ
(ग) राहुल सांकृत्यायन द्वारा पटना संग्रहालय को प्रदत्त सामग्री
(घ) राहुलजी पर एक दुर्लभ कविता
सहायक ग्रन्थ-सूची 170 - 181

पहला अध्याय
हिन्दी में यात्रा साहित्य का स्वरूप

सारांश : *प्रस्तुत अध्याय यात्रा साहित्य के विकास से सम्बन्धित है। यात्रा की आवश्यकता, यात्रा साहित्य का महत्त्व, यात्रा साहित्य का लेखकीय व्यक्तित्व के साथ सम्बन्ध तथा यात्रा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं से सम्बन्ध आदि विषयों पर विचार किया गया है। साथ ही विषय एवं देशगत आधार पर यात्रा साहित्य का विभाजन भी प्रस्तुत है।*

अध्याय एक
हिन्दी में यात्रा साहित्य का स्वरूप

यात्रा साहित्य एक ऐसा दर्पण है जो लेखक की कलात्मक अनुभूतियों को संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है। 'यात्रा' संस्कृत स्त्रीलिंग शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत की 'या' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'जाना'। 'या' धातु के साथ 'ष्ट्रन' प्रत्यय लगाकर 'यात्रा' शब्द बना है। गमन, प्रस्थान आदि अर्थों में इस शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार 'यात्रा' शब्द का अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना। 'यात्रा' के लिए मराठी में प्रयुक्त शब्द है 'प्रवास'। 'वस्' शब्द का अर्थ है 'दूर रहना','दूर जाना', 'यात्रा करना' आदि। हिन्दी में यात्रा के लिए सफर, प्रयाण, प्रस्थान, गमन आदि अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त 'यात्रा' सम्बन्धी शब्दावली निम्नांकित है :-

संस्कृत - यात्रा
हिन्दी - यात्रा
बंगला - यात्रा, सफर, गमन
मराठी - प्रवास
गुजराती - यात्रा
पंजाबी - पेंडा
उर्दू - सफर
तमिल - प्रयाणम्
मलयालम - यात्रा

'यात्री' के लिए भी हिन्दी में घुमक्कड़, यायावर आदि शब्दों का प्रयोग होता है। 'घुमक्कड़' शब्द का कोशगत अर्थ है - बहुत घूमनेवाला।

'यायावर' शब्द - वह जो एक जगह टिककर न रहता हो - अर्थ में प्रयुक्त होता है।

1.1 यात्रा का तात्पर्य और यात्रा साहित्य का महत्त्व

'यात्रा' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में 'हिन्दी विश्वकोश' में डॉ नगेन्द्रनाथ बसु ने लिखा है - *"विजय की इच्छा से कहीं जाना; चढाई; पर्याय व्रज्या; अभिनिर्याण; प्रस्थान; गमन; गम् प्रस्थिति। दर्शनार्थ देवस्थानों को जाना; तीर्थाटन। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने की क्रिया आदि।"*[1] प्रारंभिक युग में युद्ध, तीर्थाटन आदि के लिए यात्रायें किया करते थे। 'यात्रा' शब्द का सामान्य अर्थ है किसी भी उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना; अर्थात् स्थान परिवर्तन को ही यात्रा कहलाता है। विभिन्न शब्दकोशों में भिन्न-भिन्न अर्थों में इस शब्द का प्रयोग किया गया है। 'बृहत् हिन्दी कोश' में इसका अर्थ है - *"जाने की क्रिया; तीर्थ-यात्रा; यात्रियों का समूह; मेला; काल-यापन; यान; प्रस्थान; चढाई; युद्ध-यात्रा; उपाय-व्यवहार; जीवन निर्वाह; उत्सव; नृत्य-गान-युक्त रास लीला के ढंग का बंगाल में प्रचलित एक अभिनय।"*[2] बंगाल में 'जात्रा' शब्द प्रचलित है। यह नृत्य-गान-युक्त एक प्रकार का उत्सव है। प्रारंभिक काल में किसी दूसरे स्थान को जाना, तीर्थयात्रा, युद्धों के लिए प्रयाण आदि के साथ-साथ बंगाल में प्रचलित इस अभिनय के रूप में भी 'यात्रा' शब्द का प्रयोग होता था।

'यात्रा' शब्द की पारलौकिक व्याख्या भी है। 'इहलोक की यात्रा', 'जीवन यात्रा' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। हमारा जीवन ही एक यात्रा है, जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा। उसमें बचपन, यौवन, बुढ़ापा जैसी अनेक अवस्थाएँ आती रहती हैं। जब किसी व्यक्ति की मत्यु होती है तब 'वह जीवन की महायात्रा से चला गया' या 'उसकी इहलोक की यात्रा

---

1. श्री नगेन्द्रनाथ बसु; हिन्दी विश्वकोश (18 वाँ भाग); पृ. 630
2. सं. कालिकाप्रसाद; राजवल्लभ मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, बृहत् हिन्दी कोश; पृ. 1118

समाप्त हुई' ऐसा कहा जाता है। डॉ. सुरेन्द्र माथुर ने 'यात्रा' शब्द की लौकिक-पारलौकिक व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हुए लिखा है - *"यात्रा का जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जीवनगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह सदैव से बडे पर्वत, घनघोर जंगल और जलते हुए रेगिस्थानों की यात्रा करता आया है।"*[1] अर्थात् प्रारंभ में भूख-प्यास मिटाने के लिए मानव यात्राएँ करते थे। लेकिन बाद में आकर सभ्यता का विकास हुआ। मनुष्य की बढ़ती आवश्यकता के अनुसार उसकी यायावरी वृत्ति भी बढ़ने लगी।

भारत के सन्दर्भ में देखें तो यात्रा के लिए 'तीर्थयात्रा', 'तीर्थाटन' आदि शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। प्राचीन काल से लेकर भारतवासियों ने धर्म को अधिक महत्त्व दिया। प्रारंभ से ही लोगों में यही विश्वास था कि पुण्य स्थानों में जाने से अपना मन पवित्र बनता है। इसलिए हिन्दुओं ने ही नहीं अन्य धर्म के लोगों ने भी तीर्थयात्राएँ की है। तीर्थयात्रा करनेवालों की संख्या में आज भी कोई कमी नहीं है। यातायात की अधिकता के कारण उसमें वृद्धि हुई है। मानव जीवन में धीरे-धीरे विकास हुआ और बाद में आकर ज्ञानवर्द्धन, मनोरंजन एवं शिकार आदि के लिए यात्राएँ करती रही हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में *"मनुष्य स्थावर वृक्ष नहीं, वह जंगम प्राणी है। चलना मनुष्य का धर्म है।"*[2] अर्थात् यात्रा करना ही मनुष्य का धर्म है। मनुष्य का इतिहास ही उसकी इसी गतिशीलता का परिणाम है।

जिस प्रकार मनुष्य शरीर के लिए वायु की ज़रूरत है उसी प्रकार मानव जीवन के लिए यात्रा की भी आवश्यकता है। किसी व्यक्ति एक कमरे में बन्ध होते हैं और बाहरी दुनिया से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है तो उसका जीवन नीरस हो जाता है। जो व्यक्ति विदेश में जाते हैं और वहाँ की

---

1. डॉ. सुरेन्द्र माथुर; यात्रा साहित्य का उद्‌भव और विकास; पृ. 10
2. राहुल सांकृत्यायन; घुमक्कड शास्त्र; पृ. 81

संस्कृति, रीति-रिवाज़ आदि की जानकारी अर्जित करते हैं; उसमें दूसरों को समझकर जीने की क्षमता आ जाती है। उसके मन में स्नेह रहता है, घृणा का भाव नहीं रहता। वस्तुतः यात्राएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण के लिए सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति, देश-विदेश, संस्कृति-संस्कृति के बीच की दूरी कम हो जाती है। प्रसिद्ध यायावर स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की राय में - *"जो जातियाँ दूसरे देशों में भ्रमण करने नहीं जातीं, जिनके यहाँ खाने-पीने के लिए काफी है और जो अपने देश को ही सबकुछ समझकर उसी में संतुष्ट रहती हैं, वे धीरे-धीरे मृत्यु की ओर चलने लगती हैं। इसके विपरीत जो बराबर देशाटन करती हैं, नये अनुभव प्राप्त करती हैं, नये विचार बाहर से लाती है, उन्हें अपने राष्ट्रीय जीवन में स्थान देती हैं और सदा जागरूक होकर रहती हैं, वे स्वाधीनता का मधुर रसपान करती हैं और उनका विकास नियमपूर्वक होता रहता है।"*[1] अर्थात् यात्राओं द्वारा अनेक जीवित देशों को प्रकाश में लाता है। मनुष्य का सर्वांगीण विकास इन्हीं यात्राओं द्वारा होता है।

भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है - अनेकता में एकता। इसी एकता के लिए देश में निकटता, सद्भाव, सामंजस्य आदि की ज़रूरत है। इस सम्बन्ध में अक्षयकुमार जैन की राय है - *"संसार में सौमनस्य बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि देश-देश के लोग एक दूसरे के निकट आयें, एक-दूसरे की समस्याओं को समझें, एक-दूसरे के गुण-दोषों को पहचानें। उनके लिए यात्रा ही एक ऐसा साधन है, जिससे यह हो सकता है।"*[2] अर्थात् यात्राओं के द्वारा ही देश में निकटता, सामंजस्य आदि आते हैं।

मनुष्य एक ऐसी प्राणी है जो जीवन में परिवर्तन चाहते रहते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी परिवर्तन चाहते हैं। इसी परिवर्तन के द्वारा मनुष्य में उत्साह तथा प्रेरणा पैदा होती है। यह परिवर्तन यात्राएँ द्वारा

---

1. सत्यदेव परिव्राजक; यात्री-मित्र; पृ. 34
2. अक्षयकुमार जैन; दूसरी दुनिया के 'दो शब्द' से

ही होता है। यात्राएँ जीवन के थकान को दूर कर मनुष्य में एक नवीन स्फूर्ति पैदा करती है जिससे मानव मन का विकास होता है। किसी दूसरे मनुष्य या प्राणी को समझने का भाव भी उसमें आ जाता है। इस प्रकार यात्राओं द्वारा लोककल्याण की भावना आ जाती है। यात्रियों के मन में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति एक उत्कट इच्छा होती है। विविध दृश्यों, प्राकृतिक सौन्दर्य और विविध संस्कृतियों को देखने-परखने पर मनुष्य की संवेदना शक्ति में बढ़ाव आता है। ज्ञानवर्द्धन भी इसका एक उद्देश्य है। 'कागद लेखी' से 'आँखिन देखी' पर आधारित ज्ञान अधिक गहरा होता है। ईसा, बुद्ध, महावीर, रामानुजाचार्य जैसे महान् व्यक्तियों ने इस प्रकार घूम-घूमकर अपनी ज्ञान संपदा को बढाया। इस प्रकार यात्रा मनुष्य जीवन की एक अपरिहार्य प्रक्रिया है।

रचनाशील मनुष्य अपनी यात्राओं से प्राप्त अनुभवों को अभिव्यक्त करता है तब यात्रा-साहित्य की सृष्टि होती है। मात्र अनुभवों का विवरण देना नहीं बल्कि रचनाकार की संवेदनात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करना भी इस विधा का लक्ष्य है। *"सौन्दर्य बोध की दृष्टि से, उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करनेवाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा-साहित्य कहा जा सकता है।"*[1] मानव निरन्तर घूमता रहता है। उनमें अधिकांश लोगों की दृष्टि देश-विदेश के सौन्दर्य के प्रति तटस्थ होते हैं। रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है - *"यात्रा-वृत्त में देश-विदेश के प्राकृतिक रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन-संदर्भ प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तु-चित्र यायावर लेखक के मानस रूप में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक उष्मा से दीप्त हो जाते हैं।"*[2] यहाँ तिवारीजी ने यही व्यक्त किया

---

1. हिन्दी साहित्य कोश; भाग -1; पृ. 663
2. रामचन्द्र तिवारी ; हिन्दी का गद्य साहित्य; पृ. 196

है कि प्राकृतिक सोन्दर्य के साथ मानव जीवन भी यात्रा साहित्य का विषय बना है। यात्रियों का ऐसा वर्ग भी है जो देश-विदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति साहित्यिक मनोवृत्ति के होते हैं। इन्हीं यात्रियों की मुक्त अभिव्यक्ति से यात्रा साहित्य का जन्म होता है।

यात्रा साहित्य का विषय अत्यन्त स्पष्ट और व्यापक है। इसकी विशेषता यह है कि सम्पूर्ण विश्व को वह अपने में समाविष्ट किये हैं। यात्रा साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह साहित्य देश-विदेश के बीच में जो दूरी है उसको दूर करके संपूर्ण विश्व में एकता स्थापित करने के लिए सहायक है। इस प्रकार मैत्रीपूर्ण स्थितियों के निर्माण में यह सहायक बन जाते हैं। जिस प्रकार यात्रा साहित्यकार अपने अनुभवों को अत्यन्त आत्मीयता के साथ प्रस्तुत करते हैं उसी प्रकार पाठक भी उसे उतनी ही आत्मीयता के साथ ग्रहण करते हैं। क्योंकि यात्रा साहित्यकार जहाँ का वर्णन करता है पाठक भी वहाँ की विभिन्न स्थलों, वस्तुओं, संस्कृतियों, भाषाओं और दृश्यों का परिचय पाता है। इस प्रकार विकसित राष्ट्र के यात्रा वर्णनों को पढ़कर छोटे-छोटे अविकसित राष्ट्र भी अपनी उन्नति के प्रति सचेष्ट होते हैं।

यात्रा साहित्य से विभिन्न देश के कला, धर्म, दर्शन, राजनीति, शिक्षा, अर्थ आदि का विवरण मिलता है। ये सभी संस्कृति की विभिन्न पहलुएँ है। किसी भी देश के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है अपनी संस्कृति। इसलिए ही सभी देश अपनी संस्कृति का विस्तार एवं संरक्षण चाहते हैं। यायावर न केवल यात्रा साहित्य के माध्यम से दूसरे देश की रीति-रिवाज़ों या संस्कृतियों का विवरण हमें देते हैं अपितु हमारी संस्कृति का प्रचार-प्रसार भी करते हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक समन्वय के साथ-साथ उसका विस्तार भी होता है। यात्रा साहित्य अस्त होती हुई संस्कृति को प्रकाश में लाने का एक माध्यम भी है। यायावरों ने देश के विभिन्न मन्दिरों, गिरिजाघरों और ऐतिहासिक स्थानों में जाकर संस्कृति के नष्ट हुई सूत्रों को एकत्रित करके

अपने यात्रा-साहित्य के माध्यम से जनता तक पहुँचाने का कार्य किया है। सत्यदेव परिव्राजक के शब्दों में *"मनुष्य खाली पहाडी नज़ारे, सुन्दर गलियाँ और भव्य भवनों को देखकर संतुष्ट नहीं होता, असली चीज़ जानने के योग्य तो देश की सभ्यता होती है।"*[1] इस प्रकार सांस्कृतिक परम्परा के संरक्षण के रूप में भी इस विधा का अपना महत्त्व है।

हरेक मानव के मन में सुप्त रूप में स्थित एक भाव है भ्रमणेच्छा। यात्रा साहित्य मानव मन के इसी भाव को जागृत करने का एक माध्यम है। अर्थात् यायावर इसी से प्रेरणा पाकर अपनी यायावरी वृत्ति का विस्तार करता है। जिसके फलस्वरूप वह देश-देशान्तर में घूमता है और खट्टे-मीठे अनुभवों से अपने व्यक्तित्व का निर्माण या विस्तार करता है। इस प्रकार यात्रा साहित्य एक प्रेरक शक्ति के रूप में हमारे सामने खड़ा है। यात्रा साहित्य न तो मात्र प्रेरक शक्ति है बल्कि वह पथ-प्रदर्शक भी है। किसी स्थान या देश की यात्रा आरम्भ करने से पहले उससे सम्बन्धित कोई यात्रा साहित्य है तो उसे पढ़ लेना यात्रा के लिए सहायक सिद्ध होगा। इस प्रकार पढ़ने से वहाँ की संस्कृति, रीति-रिवाज़, खान-पान आदि की जानकारी मिलने के साथ यात्रा के दौरान होनेवाली कठिनाइयों का भी पता चलता है जिसके फलस्वरूप यात्रा सुगम हो जाती है, साथ ही उस देश की अंतरंग संस्कृति की जानकारी भी मिलती है।इस प्रकार विश्व समाज की संपूर्ण झाँकी रहने के कारण यात्रा साहित्य का अपना अलग महत्त्व है।

यात्रा साहित्य में यायावर प्रकृति और जीवन के विविध पक्षों की व्याख्या ही नहीं देता बल्कि हर वस्तु को अपनी नज़रिये से देखता है। डॉ. रघुवंश के अनुसार - *"यात्रा का बहुत बडा आकर्षण प्रकृति की पुकार में है। यायावर वही है जो चलता जाय, कहीं रुके नहीं, कोई बंधन उसे कसे नहीं और वह जो दर्शनीय है, ग्रहणीय है, स्मरणीय है अथवा संवेदनीय है, उसका संग्रह करता चले.....या यों कहें कि जो मुक्त भाव से, अनुभूतियाँ*

---

1. सत्यदेव परिव्राजक; मेरी जर्मन यात्रा; पृ. 106

संजोता हुआ, देश-काल में फैले अनन्त जीवन में साँसें लेता हुआ यात्रा नहीं करता, वह यात्रा का साहित्य नहीं दे सकता, विवरण प्रस्तुत कर सकता है।"[1] यही कारण है कि अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा लिखित यात्रा साहित्य में स्वरूपगत भिन्नता होती है। संसार का जो भी कार्य वह छोटा हो या बड़ा, यात्रा साहित्य से हमें मिलता है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक विश्व का कोई भी पक्ष यात्रा साहित्य में आता है। कुछ रचनाकार यात्रा की तैयारियों को महत्त्व देते हैं तो कुछ रचनाकार उस यात्रा से अर्जित अनुभूतियों को महत्त्व देते हैं, जो प्राकृतिक सौन्दर्य हो या राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्थाएँ हो। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भौगेलिक परिवेश को प्रमुखता देते हुए कहा है - *"यात्रा-संस्मरण का एक पक्ष भूगोल के आकर्षण से जुडा हुआ है।"*[2] हर एक स्थल का भौगोलिक परिवेश भिन्न-भिन्न होता है। कहीं पर्वत, कहीं सागर, कहीं जंगल या कहीं झीलों-झरनों से शोभित भू-भाग, अपने सौन्दर्य के कारण यात्री को आकर्षित करता है। यात्रा साहित्यकारों ने इन्हीं भौगोलिक परिवेश को अपने यात्रा साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। प्रकृति भूगोल से जुड़ा हुआ है। अनादिकाल से लेकर मानव और प्रकृति के बीच में एक अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य का जन्म उस प्रकृति की गोद में हुआ है जिसने ही उसका पालन-पोषण करके आज के मानव के रूप में रूपायित किया है। यात्रा साहित्य में उस प्रकृति के सुन्दर, मनोरम और आत्मीय रूप प्रतिबिम्बित होता है।

यायावर किसी देश के वर्तमान परिदृश्य को प्रस्तुत करने के साथ वहाँ के ऐतिहासिक सन्दर्भों को भी प्रकाश में लाता है। महलों, खण्डहरों, किलों, मन्दिरों का वर्णन करने के साथ उनका इतिहास भी प्रस्तुत करते हैं। जिसमें किसी राजवंश का इतिहास, परम्पराएँ आदि को भी स्थान दिया है। इन सभी प्रसंगों को एक इतिहासकार के रूप में नहीं साहित्यकार के रूप

---

1. डॉ. रघुवंश; आलोचना, जुलाई 1954; पृ. 11-12
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी; हिन्दी साहित्य और संवेदना का इतिहास; पृ. 192

में प्रस्तुत करता है। अर्थात् उनमें निहित मानवीय संवेदना को प्रकाश में लाया है।

कुछ यात्रा साहित्य किसी देश की प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व पर विचार करने के स्थान पर वहाँ की राजनीतिक, आर्थिक विश्लेषणों पर अधिक बल देते हैं। उसमें लेखक एक विश्लेषक की भूमिका निभाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ ये यात्रा साहित्य युगीन समस्याओं पर भी प्रकाश डालता है। यात्रा साहित्य में व्यक्ति विशेष को उतना महत्त्व नहीं है। फिर भी यात्रा में ऐसी अनेक व्यक्तियाँ आती हैं जो लेखक के आत्मीय बन जाते हैं। उसके आचरण के कारण वह किसी जाति, देश-प्रदेश का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे व्यक्ति चित्र किसी भू-भाग के परिवेश में आत्मीयता का संचार करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

यात्रा साहित्य में यात्री ने विभिन्न देशों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक असमानताओं को पूरी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है। लेकिन ऐसी असमानताओं के बावजूद कुछ ऐसे मूलभूत तत्त्व हैं जो विभिन्न परिवेश में जीनेवाले मानव-मात्र को एक सूत्र में बाँधते हैं। यात्री लोग विभिन्न देश की संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। इस प्रकार के अध्ययन से हमें यह पता चलता है कि दूसरे देश की प्रगति कैसी है और जो हमारे देश से किस प्रकार पृथक है। संवेदनशील यात्री विभिन्न देश की विविधता के साथ-साथ मानवीय एकता को भी देखता-परखता है। यशपाल ने इसी एकता को महत्त्व देते हुए लिखा है - *"ऐसा जान पडता था अपने-अपने राष्ट्रों और जातीय अस्मिता का गौरव लिये भी मनुष्य मात्र के जीवन की भावना एक ही है। अनेक रंग-रूप, पोशाकों और बोलियाँ बोलनेवाले मानव का खून एक ही है और सहयोग के बल पर ही अपनी मानवता को अजर अमर बना सकता है।"*[1] अर्थात् विभिन्न देश में, विभिन्न परिवेश में जीनेवालों की भावनाएँ और संवेदनाएँ एक ही धरातल से

1. यशपाल; लोहे की दीवार की दोनों ओर; पृ. 99

जुड़ी हुई है। इस प्रकार यात्रा साहित्य में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना अभिव्यक्त होती है। संक्षेप में कहें तो लेखक यात्रा साहित्य के माध्यम से जीवन जगत के विभिन्न अनुभवों को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार अपने अनुभवों को पाठकों तक पहुँचाना उनका लक्ष्य है; जिससे पाठक लेखक के साथ यात्रा करने का आभास भी करा सकें।

1.2. यात्रा साहित्य का लेखकीय व्यक्तित्व के साथ सम्बन्ध

साहित्य की हर एक विधा का सम्बन्ध उसके लेखक से होता है। चाहे वह उपन्यास हो, या कविता या कहानी - उसमें रचनाकार अपने अनुभवों, संवेदनाओं या विचारों को अभिव्यक्त करता है। लेखक की मानसिक संरचना के अनुसार ही किसी भी रचना का रूपायन होता है। अधिकांश विधाओं में यह सम्बन्ध अप्रत्यक्ष रूप में है। यात्रा साहित्य, आत्मकथा, रेखाचित्र जैसी विधाओं में लेखक का यह आत्मपक्ष प्रत्यक्षत: देखने को मिलता है। अन्य विधाओं की तुलना में यात्रा साहित्य का लेखक के साथ उतना सम्बन्ध है कि उसमें वह अपनी यात्रा में प्राप्त व्यक्तिगत अनुभवों को तथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। लेखक की दृष्टि जितनी पैनी, उदार, भावुक तथा संवेदनशील होती है उसका यात्रा साहित्य उतना ही प्रभावोत्पादक होगा। यात्री की सौन्दर्य दृष्टि, विवेक बुद्धि आदि यात्रा को नया अर्थ प्रदान कर देते हैं। काका साहब कालेलकर के शब्दों में - *"मैं मानता हूँ कि यात्रा का वर्णन लिखते समय अपने निरीक्षण, परीक्षण, चिन्तन और तुलना सबका निचोड उसमें आ जाता है.....यात्रा वर्णन में लेखक का जीवन और व्यक्तित्व ही स्वाभाविक ढंग से प्रतिबिम्बित होता है।"*[1] अर्थात् यात्री अपने अनुभवों को यात्रा साहित्य में प्रस्तुत करने के कारण उसका जीवन और व्यक्तित्व उसमें स्वत: ही आ जाता है।

---

1. काका साहब कालेलकर; यात्रा का आनन्द; पृ. 6.

यात्रा में जो स्थान, घटना, पात्र या प्रसंग उसकी दृष्टि में आते हैं वह अपनी संवेदनात्मक अनुभूति में ढ़लकर यात्रा साहित्य का विषय बनाता है। लेखक केवल तथ्यों का संकलन ही नहीं करता बल्कि सभी को अपनी दृष्टि से देखने का प्रयास भी करता है। अलग-अलग लेखकों द्वारा एक ही स्थान का विवरण प्रस्तुत करता है, जो एक समान नहीं होते हैं। इसका कारण यही है। प्रत्येक यात्रा-साहित्य की अपनी विशिष्टता है, जो लेखक के व्यक्तित्व की विशिष्टता से जुड़ा हुआ है।

यात्रा साहित्य पढ़ते समय पाठक लेखक के व्यक्तित्व एवं दृष्टिकोण से भी परिचय प्राप्त करता है। सामान्य भौगोलिक विवरण से यात्रा-साहित्य को पृथक करके एक साहित्यिक रूप प्रदान करने में लेखक का यह व्यक्तित्व पक्ष अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं। कला के प्रति अपने-आपको समर्पित साहित्यकार ही एक महत्त्वपूर्ण यात्रा-साहित्य का सृजन करता है। सामान्य यात्रा विवरण भी साहित्यकार के व्यक्तित्व का स्पर्श पाकर सृजनात्मक साहित्य की कोटि में आ जाता है। साहित्यकार के व्यक्तित्व में निहित अभिव्यक्ति की कुशलता ही इसके लिए सहायक है। यात्रा साहित्य में लेखक केन्द्र में रखते हुए भी वह आत्मकथा नहीं बनता। 'हिन्दी साहित्य कोश' में लिखा है - *"अपने को केन्द्र में रखकर भी प्रमुख न होने देना साहित्यिक यायावर का कर्त्तव्य है, क्योंकि यदि लेखक का व्यक्तित्व उभरेगा तो अन्य सब गौण हो जायेगा और यात्रा-साहित्य न होकर आत्मचरित ही रह जायेगा, यात्रा-संस्मरण न रहकर आत्म-संस्मरण हो जाएगा।"*[1] एक सामान्य व्यक्ति या साहित्यकार द्वारा लिखित यात्रा साहित्य में भिन्नता है। सामान्य व्यक्ति द्वारा लिखित यात्रा साहित्य एक विवरण मात्र होता है। उसमें साहित्यकार की कलात्मक दृष्टि नहीं होती। वास्तव में यह साहित्य नहीं है,

1. सं. धीरेन्द्र वर्मा; हिन्दी साहित्य कोश- भाग-2; पृ. 512

एक विवरण मात्र है। यात्रा साहित्य में रचनाकार अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। वास्तव में यात्रानुभवों से प्राप्त आनन्द को साहित्य के माध्यम से पाठकों तक पहूँचाना लेखक का उद्देश्य है। यात्रा के बाद लेखक उन भावुक एवं संवेदनशील अनुभवों को पुन: अपने अन्तर्मन में देख उसे शब्दबद्ध रूप में अभिव्यक्ति देता है। लेखक का व्यक्तित्व जितना ही प्रगल्भ, भावुक तथा संवेदनशील होता है, उसकी दृष्टि उतनी ही संवेदनशील होती है और वह यात्रा साहित्य भी उच्च कोटि का होता है। यात्रा लेखक को विवेकशील होना चाहिए। अर्थात् निरर्थक घटनाओं को दूर रखकर यात्रा साहित्य की रचना करनी चाहिए। उसी प्रकार यात्रा लेखक का मन घृणा, तिरस्कार आदि भावों से मुक्त होना चाहिए। नयी बात, नया दर्शन पाठकों को मिलना चाहिए जिससे उसके मन में जो मैल, उदासी आदि है, वह दूर हो जाए।

1.3 यात्रा साहित्य का अन्य गद्य विधाओं से सम्बन्ध

यात्रा साहित्य के लिए अनेक शब्द प्रचलित है - यात्रा निबन्ध, यात्रा संस्मरण, यात्रा विवरण, यात्रा वर्णन तथा यात्रा वृत्तान्त या यात्रा वृत्त आदि। यात्रा साहित्य हिन्दी साहित्य में एक स्वतन्त्र विधा के रूप में अपना स्थान निर्धारित करता है। फिर भी गद्य की अन्य विधाओं से भिन्न करके देख पाना कठिन हो जाता है।

1.3.1 यात्रा साहित्य तथा निबन्ध

यात्रा साहित्य और व्यक्तिनिष्ठ निबन्ध में समानता है। क्योंकि दोनों में लेखक ने अपने व्यक्तित्व को समान रूप से महत्त्व दिया है। दोनों में कल्पना के सहारे व्यक्तिगत अनुभूतियों को वाणी देती है। पाठकों को आत्मीयता के सूत्र में बाँधने की क्षमता दोनों में होती है। दोनों विधाएँ सूचनात्मक है। सभी निबन्ध यात्रा साहित्य नहीं है लेकिन सभी यात्रा साहित्य एकहद तक निबन्ध है। अर्थात् यात्रा लेखों को यात्रा निबन्ध कहने की

पद्धति है। प्रारंभ में यात्रा साहित्य को निबन्धों के अन्दर ही रखा है, बाद में आकर स्वतन्त्र विधा के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

1.3.2 यात्रा साहित्य और आत्मकथा

आत्मकथा भी एक प्रकार की यात्रा साहित्य है; किसी व्यक्ति की जीवन यात्रा। आत्मकथा और यात्रा साहित्य दोनों में लेखक की अनुभूतियों की आत्माभिव्यक्ति है। दोनों रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज, संस्कृति, रीति-रिवाज़ आदि का परिचय मिलता है। यात्रा साहित्य की तुलना में आत्मकथा आकार में बड़ा है। लेखक का संपूर्ण जीवन उसमें समाहित है। घर और बाहर के जीवन को अंकित किया जाता है। परन्तु यात्रा साहित्य में किसी एक कालखण्ड का चित्रण है और जो बाहर के जीवन से सम्बन्धित है। आत्मकथा में 'स्व' को महत्त्व दिया जाता है जबकि यात्रा साहित्य में यात्रा लेखक की दृष्टि, उसका अनुभव और यात्रा में मिले किसी अपरिचित व्यक्ति को महत्त्व दिया जाता है।

दोनों विधाओं में समानता यह है कि दोनों निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति है। एक जीवन की यात्रा है तो दूसरा उसी यात्रा का एक अंश।

1.3.3 यात्रा साहित्य और रेखाचित्र

यथार्थ पर बल देते हुए दोनों का सृजन होता है। दोनों में लेखक के संपर्क में आए किसी व्यक्ति या वस्तु का चित्रण होता है, जो लेखक की संवेदना को जगाते हैं। रेखाचित्र व्यक्ति या वस्तु चित्रों के अतिरिक्त अन्य बातों को गौण मानते हैं। लेकिन यात्रा-साहित्य में व्यक्ति या वस्तु को जितना महत्त्व दिया जाता है उतना ही महत्त्व परिवेश, प्रकृति आदि को भी दिया जाता है। यात्रा साहित्य लिखने के लिए लेखक को यात्रा अवश्य करनी पड़ती है जबकि रेखाचित्रकार बिना यात्रा किए भी रेखाचित्र का सृजन करते हैं। क्योंकि यह किसी वस्तु या व्यक्ति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण मात्र है। यात्रा साहित्य की रचना प्राचीन काल से ही हुआ करती थी। फिर भी एक स्वतन्त्र विधा के रूप में रेखाचित्र के बाद इसे मान्यता प्राप्त हुई।

लेखक जब चित्रात्मक शैली में यात्रा साहित्य की रचना करते हैं तब उसकी शैली रेखाचित्र का-सा होता है। डॉ. सुरेन्द्र माथुर ने यात्रा साहित्य की चित्रात्मक शैली का विवेचन करते हुए लिखा है - *"शब्द चित्रांकन के लिए सबसे अधिक उपयोगी और उपादेय शैली यही है। इस शैली का मुख्य उपयोग किसी वस्तु या भाव के चित्र-वर्णन में तथा किसी स्थान दृश्य आदि के विशेष चित्रों का दिग्दर्शन कराने में होता है।"*[1] इसी चित्रात्मक शैली के कारण यात्रा-साहित्य के संपूर्ण स्वरूप में कहीं-कहीं रेखाचित्र की झलक मिलती है।

1.3.4 यात्रा साहित्य और संस्मरण

संस्मरण यात्रा-साहित्य की सबसे निकटवर्ती विधा है। डॉ हरदयाल के शब्दों में कहें तो *"यात्रा-वृत्त संस्मरण का ही एक विशिष्ट प्रकार है।"*[2] बीती हुई घटनाओं का सम्यक् स्मरण दोनों में होता है। किन्तु दोनों के स्मरण में अंतर है। संस्मरण अपने व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित किसी व्यक्ति की स्मृतियों के आधार मानकर लिखे जाते हैं। लेकिन यात्रा साहित्य में यात्रा के दौरान आनेवाले दृश्यों या घटनाओं को स्मरण करके उनका चित्रण किया जाता है। यात्रा साहित्य का फलक बहुत बडा होता है। उसमें भूगोल, संस्कृति, समाज आदि होते हैं। जबकि संस्मरण में किसी एक व्यक्ति या जीवन की कुछ अविस्मरणीय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है। यात्रा में जिनकी भेंट होती है उनका मात्र परिचय यात्रा साहित्य में होता है। संस्मरण किसी एक का चरित्र-चित्रण होता है। यात्रा साहित्य में केवल व्यक्ति चित्रण ही नहीं प्रकृति, भूगोल आदि का भी वर्णन होता है, जो संस्मरण में नहीं होता। उसी प्रकार संस्मरण में घटनाओं का उल्लेख मात्र होता है। वहीं यात्रा साहित्य में यात्रा में हुई घटनाओं के प्रति लेखक की

---

1. डॉ.सुरेन्द्र माथुर; हिन्दी यात्रा साहित्य का उद्‌भव और विकास; पृ. 345-46
2. डॉ.हरदयाल; आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य; पृ. 60

प्रतिक्रिया भी व्यक्त होती है।

1.3.5 यात्रा साहित्य और रिपोर्ताज

रिपोर्ताज का सम्बन्ध पत्रकारिता के क्षेत्र से हैं। किसी घटना, दुर्घटना या मेला आदि के रिपोर्ट को कलात्मक और साहित्यिक रूप दिया जाता है तो रिपोर्ताज की सृष्टि होती है। इस प्रकार रिपोर्ताज पत्रकारिता के स्तर की साहित्यिक विधा है। रिपोर्ताज में लेखक मात्र एक दर्शक के रूप में है लेकिन यात्रा साहित्य में अपनी अनुभूतियों को संवेदनात्मक रूप में अभिव्यक्ति देता है और एक प्रकार के आत्मानन्द का भी अनुभव करता है। रिपोर्ताज लिखते समय लेखक को किसी घटना, दुर्घटना, मेला आदि से सम्बन्धित जानकारी पहले ही मिलती है जबकि यात्रा-साहित्य की सृष्टि करते समय वह अपने अनुभवों को प्रमुखता देते हैं, वहाँ कोई पूर्वनिश्चित जानकारी नहीं होती है। रिपोर्ताज में केवल घटनास्थल की रिपोर्ट होती है जबकि यात्रा-साहित्य में घटनाओं के साथ-साथ मार्ग का भी मनोरम चित्र प्रस्तुत किया जाता है। दोनों विधाओं में लेखक का व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में समाहित है; दोनों में रेखाचित्र, निबन्ध, संस्मरण आदि की विशेषताएँ पायी जाती है, दोनों वर्णनात्मक भी है। ये सब होते हुए भी दोनों में भिन्नता है।

1.3.6 यात्रा साहित्य और डायरी साहित्य

वास्तविक सुख-दुख को प्रकट करते हुए लेखक का सही व्यक्तित्व दोनों में प्रतिबिम्बित होता है। दोनों में बीती हुई घटनाओं का स्मरण तथा पुनर्मूल्यांकन होता है। इन दोनों विधाओं का संस्मरण तथा रेखाचित्र के साथ समान रूप से सम्बन्ध है। क्योंकि दोनों में व्यक्ति, वस्तु या परिवेश का अंकन होता है। वास्तव में यात्रा साहित्य के लिए डायरी एक माध्यम है। अधिकतर लेखक डायरी में लिखित टिप्पणी के माध्यम से यात्रानुभवों का स्मरण करके साहित्यिक अभिव्यक्ति देते हैं। डायरी लेखक पाठकों के लिए नहीं लिखता। अर्थात् मनोरंजन या ज्ञानार्जन डायरी लेखक का उद्देश्य नहीं

है। वे अनुभूतियों का अंकन मात्र करता है। यात्रा साहित्य जीवनानुभूतियों के अंकन के साथ-साथ पाठकों को मनोरंजन भी प्रदान करता है।

1.3.7 यात्रा साहित्य तथा पत्र साहित्य

वैयक्तिक आनन्द के क्षणों को लिपिबद्ध करने के उद्देश्य से दोनों विधाओं का सृजन होता है। दोनों विधाएँ व्यक्तिगत सुख-दुख के अनुभवों को दूसरों तक पहूँचाकर एक प्रकार की आनन्दानुभूति प्राप्त कराते हैं। यात्रा-साहित्य की एक शैली के रूप में पत्र को अपनाया है। अधिकांश यात्रा साहित्य पत्र शैली तथा डायरी शैली में लिखा जाता है। पत्र घर बैठे ही लिख सकते हैं, लेकिन यात्रा साहित्य घर बैठे नहीं लिख सकते। उसके लिए यात्रा अवश्य की जानी चाहिए। पत्र एक शैली के रूप में मान्य है और एक साहित्यिक विधा के रूप में भी। लेकिन यात्रा साहित्य की मान्यता केवल एक साहित्यिक विधा के रूप में होता है। पत्र किसी एक को सम्बोधित करते हुए लिखा जाता है। लेकीन यात्रा साहित्य किसी एक के लिए नहीं सभी पाठकों के लिए होता है। पत्र में केवल अन्तर्मन की भावनाओं को प्रमुखता दी जाती है जबकि यात्रा साहित्य में अन्तर्मन के साथ बाह्य जगत की भी स्थापना होती है।

संक्षेप में कहें तो यात्रा साहित्य की शैलियों के कारण ही वह अन्य विधाओं से सम्बन्ध रखता है। डॉ. रघुवंश की राय में *"समग्र जीवन को अभिव्यक्ति देनेवाले यात्रा साहित्य में महाकाव्य और उपन्यास का विराट् तत्त्व, कहानी का आकर्षण, गीति काव्य की मोहक भावशीलता, संस्मरणों की आत्मीयता, निबन्धों की मुक्ति सब एक साथ मिल जाती है।"*[1] वस्तुत: यात्रा साहित्य सभी गद्य विधाओं के गुणों का समन्वित और मौलिक सृजनात्मक साहित्यिक रूप है।

1.4 यात्रा साहित्य के प्रकार

यात्रा साहित्य का एक स्वतन्त्र विधा के रूप में अस्तित्व निर्धारित

---

1. डॉ.रघुवंश; हिन्दी साहित्य कोश; पृ. 610

कर लेने के बाद उसके प्रकारान्तर पर विचार करना आवश्यक है; जो साहित्य विशेष को समझने में सहायक सिद्ध होता है। यात्रा साहित्य को मुख्यत: दो आधारों पर विभाजित किया जा सकता है।

1.4.1 विषय के आधार पर।

1.4.2 देशगत आधार पर।

विषय के आधार पर यात्रा साहित्य को मुख्यत: तीन रूपों में विभक्त किये हैं।

1.4.1.1 वर्णनात्मक यात्रा साहित्य

1.4.1.2 प्राकृतिक सौन्दर्य प्रधान यात्रा साहित्य

1.4.1.3 लेखकीय व्यक्तित्व प्रधान यात्रा साहित्य

1.4.1.1. वर्णनात्मक यात्रा साहित्य

यात्रा साहित्यकार एक स्वतन्त्र जीव है। वह हर व्यक्ति, वस्तु घटनाओं का यथार्थपरक वर्णन करता है। लेकिन सूचनाओं के एकत्रीकरण को यात्रा साहित्य नहीं कहा जा सकता। बिना वर्णनात्मकता से यात्रा साहित्य की सृष्टि नहीं होती। यात्रा करने से पूर्व लेखक के मन में वर्ण्य विषय की कोई पूर्वनिश्चित परिकल्पना नहीं होती है। यात्रा करते समय यात्री की आँखें खुली होती है और जो विश्व के विभिन्न भू-भागों को देखता-परखता है। वर्णनात्मक यात्रा साहित्य में किसी एक घटना या वस्तु को केन्द्र में नहीं रखा जा सकता। उसमें यात्रा में हुई सभी घटनाओं या व्यक्तियों का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया जाता है। राजनीति, इतिहास, भूगोल सभी वर्णनात्मक यात्रा साहित्य का विषय बन जाता है। वर्णनात्मक यात्रा साहित्य में रोचकता, आत्मीयता, चित्रात्मकता, साहित्यिकता आदि अनेक गुण पाये जाते हैं।

1.4.1.2 प्राकृतिक सौन्दर्य प्रधान यात्रा साहित्य

प्रकृति की गोद में जन्मे मनुष्य उसके विराट सौन्दर्य का उपभोग

करता रहा है। यात्रा साहित्यकार जिस भू भाग की यात्रा करता है वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य ही सर्वप्रथम उसकी कृति का विषय बन जाता है। पृथ्वी की भौगोलिक भिन्नता के कारण प्राकृतिक सौन्दर्य भी भिन्न है। कहीं हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाऐं हैं तो कहीं नदी, निर्झर आदि से भरपूर जलीय भू भाग, ये सभी यात्री के मन को आकर्षित करता है। यात्रा के मूलभूत कारणों से एक है प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने की उत्कट इच्छा। इसलिए सभी यात्रा साहित्य में प्राकृतिक वर्णन कहीं न कहीं देखने को मिलता है। फिर भी कुछ यात्रा साहित्य मात्र प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर है। ऐसे यात्रा साहित्य के रचयिता मात्र भ्रमण के लिए निकलनेवाला है; उनका और कोई उद्देश्य नहीं होता। इस प्रकार के यात्रा साहित्य में प्रकृति का संगीत सुनाई पडता है, उसकी चेतना का अनुभव किया जाता है। पर्वतीय, जलीय, थलीय प्रकृति का ऐसा सौन्दर्य चित्रण यात्रा साहित्य में जितना होता है उतना अन्य विधाओं में नहीं होता।

1.4.1.3 लेखकीय व्यक्तित्व प्रधान यात्रा साहित्य

रचना और रचनाकार का सम्बन्ध किसी भी साहित्य में देखने को मिलता है। क्योंकि लेखक के अनुभवों को साहित्य के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करती है। निबन्ध, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में लेखक अप्रत्यक्ष रहता है, वह पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। लेकिन यात्रा साहित्य में लेखक प्रत्यक्षत: अपने अनुभवों का अवलोकन करता है। इसलिए ही यात्रा साहित्य में लेखकीय व्यक्तित्व का बहुत महत्त्व है।

सभी यात्रा साहित्य में लेखक का व्यक्तित्व पक्ष निखर उठता है। फिर भी स्वान्त सुखाय की गयी यात्राओं में यह प्रखर रूप में आता है। लेखकीय व्यक्तित्व प्रधान यात्रा साहित्य में सभी विषय रचनाकार की अनुभूति में ढलकर ही व्यक्त होते हैं। इस प्रकार के यात्रा साहित्य में लेखक यात्रा में हुई सभी घटनाओं, दृश्यों का अंकन अपने ही नज़रिये से करता है। कभी-कभी इसे आत्म कथांश प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार के यात्रा

साहित्य से रचनाकार के विचारों के साथ उनकी जीवन-चर्या, जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण आदि का भी परिचय मिलता है; जो साधारण यात्रा साहित्य से इसे पृथक करता है।

1.4.2 देशगत आधार पर

भारत तथा विदेशी यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य को देशगत आधार पर मुख्यत: दो वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है -

1.4.2.1 स्वदेश यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

1.4.2.2 विदेश यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

1.4.2.1 स्वदेश यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

भारतीय यायावरों ने भारत के अनेक रमणीय स्थानों की यात्रा करके विपुल साहित्य की सृष्टि की है। वास्तव में इन यायावरों ने प्रान्तीय, जातीय तथा भाषायी भेदों को मिटाकर एक राष्ट्रीय भूमिका अदा की है। इनमें अधिकांश यात्रापरक कृतियाँ हिमाचल की पर्वतीय सौन्दर्य से भरपूर है। ये यात्रा साहित्य हिमालयी प्रकृति के दिव्य रूप ही नहीं वहाँ की जीवन्त संस्कृति को भी मुखरित करते हैं। दक्षिण भारत से सम्बन्धित कृतियों में वहाँ के जन-जीवन को यथातथ्य उद्‌घाटित करते हैं। उत्तरांचल से सम्बन्धित यात्रावृत्तों की अपेक्षा इनकी संख्या बहुत कम है।

1.4.2.2. विदेश यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

अनेक हिन्दी यात्रा-वृत्तकारों ने विश्व के विभिन्न देशों में यात्रा कर अपने अनुभवों को लिपिबद्ध करके यात्रा साहित्य विधा को समृद्ध किया है। इन कृतियों में रूस, चीन, जापान, तिब्बत, नेपाल, अफगानिस्तान, इरान, यूरोप जैसे विविध देशों की यात्राओं का वर्णन मिला है। इन यात्रापरक कृतियों के द्वारा हिन्दी पाठकों को विश्व-समाज को समझने का एक नया आयाम प्राप्त हुआ है। संख्यात्मक दृष्टि से देखें तो विदेशी यात्राओं से सम्बद्ध कृतियाँ अधिक है। विभिन्न देशों की कला, संस्कृति, प्रकृति, समाज एवं मनुष्य जाति का संपूर्ण विवरण इन यात्रा वर्णनों से प्राप्त हुआ है।

1.5 हिन्दी का यात्रा साहित्य

अनादिकाल से मनुष्य निरन्तर यात्राएँ करती रही है। प्राचीन ग्रन्थों में यात्रा का उल्लेख कहीं न कहीं हुआ है। यात्रा साहित्य के मूल स्रोत को विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में देखा जा सकता है। ऋग्वेद में वसिष्ठ एवं वरुण द्वारा की गयी यात्रा की कठिनाइयों पर प्रकाश डाला गया है। 'महाभारत' तथा वाल्मीकी कृत 'रामायण' आदि ग्रन्थों में भी यात्रा का सुन्दर वर्णन है। 'रामायण' में विश्वामित्र के साथ श्रीराम और लक्ष्मण की मिथिलापुरी यात्रा, श्रीरामजी की वनयात्रा, पंचवटी यात्रा आदि अनेक यात्राओं का वर्णन है। इसी प्रकार 'महाभारत' में अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा के साथ पाण्डवों की पांचालदेश यात्रा, श्रीकृष्ण की भीम और अर्जुन के साथ मगध देश की यात्रा आदि अनेक यात्रा वर्णन देखने को मिलता है। पुराण एवं संहिताओं में भी यात्रा का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

'रामायण', 'महाभारत', 'पुराण' जैसे ग्रन्थों से यात्रा का जो मूल स्रोत हमें मिलता है उसका विकसित रूप बाद के संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्य है। माघ का 'शिशुपालवधम्', कालिदास का 'कुमारसंभवम्', 'रघुवंश', 'मेघदूतम्' सोमदेव कृत 'कथासरितसागर' आदि ग्रन्थों में यात्राओं का जो वर्णन हमें मिलता है वे उन्हीं लेखकों की घुमक्कड़ी वृत्ति की ही देन है। आगे चलकर बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों ने इसी यात्रा वर्णन परम्परा को समृद्ध किया है। इन्हीं ग्रन्थों में धर्मप्रचारार्थ की गई यात्राओं का उल्लेख है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विश्व साहित्य में यात्रा वर्णन की जो परम्परा है वह अत्यन्त प्राचीन है। 'वेद', 'रामायण', 'महाभारत' जैसे प्राचीन ग्रन्थों में यात्रा का जो उल्लेख है वह केवल प्रसंगवश ही आते हैं। इन्हें यात्रा साहित्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उसी प्रकार बाद के संस्कृत कवियों और बौद्ध तथा जैन धर्माचार्यों ने भी यात्रा-साहित्य का सृजन नहीं किया। लेकिन इन्हीं प्रारंभिक यात्रा वर्णनों ने हिन्दी यात्रा साहित्य को पृष्ठभूमि प्रदान किया है।

उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती जिन यात्रा कृतियों का उल्लेख है वह व्रज प्रदेश के तीर्थों, मन्दिरों, प्राकृतिक दृश्यों आदि का हस्तलिखित रूप है, जिनकी भाषा व्रज है। इन हस्तलिखित ग्रन्थों का समय विक्रम सं. 1600 से 1966 तक माना जाता है, डॉ. सुरेन्द्र माथुर ने इस काल को 'हस्तलिखित ग्रन्थों का युग' कहा है।

हिन्दी यात्रा साहित्य के सर्वप्रथम हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में श्री गोस्वामी विट्ठलजी द्वारा लिखित 'वन यात्रा' को माना जाता है। 44 पृष्ठों के इस ग्रन्थ में विट्ठलजी ने व्रजमण्डल के विविध दृश्यों को अत्यन्त भक्तिभाव से चित्रित किया है। 'वनयात्रा' नाम से अन्य दो हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। उनमें प्रथम के रचनाकाल एवं रचयिता के सम्बन्ध में प्रमाण उपलब्ध नहीं है। 65 पृष्ठों की यह रचना अपूर्ण है। 'वनयात्रा' नामक अगली जो कृति है उसकी रचनाकार है जीमन महाराज की माँ। इसमें भी गोकुल, मथुरा, गोवर्धन, वृन्दावन आदि स्थानों के प्राकृतिक वर्णन को प्रस्तुत किया गया है। 'व्रजपरिक्रमा', 'सेठ पद्मसिंह की यात्रा', 'बात दूर देश की', 'व्रज चौरासी कोस वनयात्रा', 'बद्रीनारायण सुगम-यात्रा' आदि अनेक हस्तलिखित कृतियों का उल्लेख है। इन ग्रन्थों में वर्णनात्मकता के साथ-साथ भावात्मकता को भी स्थान दिया गया है। इन यात्रापरक कृतियों में गद्य की अपेक्षा पद्य की प्रधानता है और पद्य में भक्ति भावना को प्रमुखता दी गई हैं। इस समय एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रूप में इन यात्रापरक कृतियों का विकास नहीं हो पाया फिर भी हिन्दी यात्रा साहित्य परम्परा में इनका विशेष स्थान है।

वर्तमान हिन्दी यात्रा साहित्य के आधुनिक रूप का विकास अन्य हिन्दी गद्य विधाओं की भाँति 19वीं शताब्दी में ही हुआ। हिन्दी यात्रा साहित्य के विकास में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं प्रसिद्ध यायावर महापण्ड़ित राहुल सांकृत्यायन। राहुलजी को केन्द्र में रखकर हिन्दी यात्रा साहित्य के विकास क्रम को तीन सोपानों में विभक्त किया जा सकता है। वे हैं:-

1.5.1 राहुल सांकृत्यायन के पूर्ववर्ती यात्रा साहित्य

1.5.2 राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य

1.5.3 राहुल सांकृत्यायन के परवर्ती यात्रा साहित्य

1.5.1 राहुल सांकृत्यायन के पूर्ववर्ती यात्रा साहित्य

आधुनिक यात्रा साहित्य का प्रारंभिक रूप विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाश में आया। मुंशी सदासुखलाल के संपादकत्व में 'बुद्धिप्रकाश' नामक एक साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन हुआ। यह आगरा से सन् 1853 ई. में प्रकाशित पत्र हैं; जिसमें शिमला से कश्मीर तक की एक पैदल यात्रा का वर्णन है, जिसे हिन्दी के प्रथम प्रकाशित यात्रा वृत्त के रूप में स्वीकारा है। निबन्ध शैली में लिखित इस यात्रा वर्णन में खडीबोली का विकसित रूप देखा जा सकता है। इस सम्बन्ध में डॉ रघुवंश का कथन है - *"यात्रा साहित्य का विकास शुद्ध निबन्धों की शैली में माना जा सकता है। निबन्ध शैली की व्यक्तिपरकता,स्वच्छन्दता तथा आत्मीयता आदि गुण यात्रा साहित्य में भी पाए जाते हैं।"*[1] अर्थात् यात्रा साहित्य की प्रारंभिक शैली निबन्ध शैली है। गद्य की अन्य विधाओं का भाँति यात्रा-वृत्त लेखन का सूत्रपात भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही किया। भारतेन्दु ने 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया और जिसके माध्यम से अपने यात्रा-वृत्तों को पाठकों तक पहूँचाने का कार्य किया। 'सरयूपार की यात्रा' नामक एक यात्रा वर्णन इसमें प्रकाशित हुआ। जिसमें वैसवारे के पुरुषों और स्त्रियों की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। 'जनकपुर की यात्रा','जबलपुर-यात्रा','हरिद्वार की यात्रा','लखनऊ की यात्रा','वैद्यनाथ की यात्रा', 'मेहदावल की यात्रा'-ये कविवचनसुधा में प्रकाशित भारतेन्दु के प्रसिद्ध यात्रा-वृत्तान्त है। उस समय एक स्वतन्त्र विधा के रूप में यात्रा साहित्य का विकास नहीं हुआ है। इसलिए ही आलोचकों ने इन्हें निबन्ध विधा के अन्तर्गत समाविष्ट

---

1. डॉ.रघुवंश; हिन्दी साहित्य कोश; पृ. 609

कर लिया है। इन यात्रा वर्णनों को भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग-3 में संकलित किया गया है। तीर्थाटन के लिए की गयी इन यात्राओं में विभिन्न प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य, रीति-रिवाज़, खान-पान तथा बोलचाल की भाषा का सुन्दर विवरण उपलब्ध है। 'हरिद्वार की यात्रा' में वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत किया है:- *"मैं उस पुण्य-भूमि का वर्णन कर रहा हूँ, जहाँ प्रवेश करने से ही मन शुद्ध हो जाता है। यह भूमि तीन ओर से सुन्दर, हरे-भरे पर्वतों से घिरी है, जिन पर्वतों पर अनेक प्रकार की बिल्ली, हरी-भरी सज्जनों के शुभ मनोरथों की भाँति फलकर लहलहा रही है।"*[1] यहाँ भारतेन्दुजी ने पुण्य भूमि हरिद्वार का वर्णन किया है। पर्वतीय सौन्दर्य के वर्णन करने में भारतेन्दुजी अत्यन्त श्रेष्ठ है। उनकी राय में उस पुण्य भूमि में प्रवेश करने से मन की शुद्धि होती है।

पं. बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र ने भारतेन्दु के समान यात्रा निबन्धों की रचना की है। बालकृष्ण भट्ट का 'कतिकी का नहान' तथा 'गया-यात्रा', प्रतापनारायण मिश्र की 'विलायत-यात्रा' इसका प्रमाण है। ओरियण्टल प्रेस लाहौर से सन् 1883 ई. में प्रकाशित 'लंदन-यात्रा' को हिन्दी का प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ माना जाता है। हरदेवीजी ने इसका लेखन कार्य संपन्न किया है। श्री भगवानदास वर्मा द्वारा सन् 1884 ई. में केवल 26 पृष्ठों की एक लघु यात्रा वृत्तांत प्रकाशित किया; जिसका नाम है 'लंदन का यात्री', जिसमें लेखक की लंदन यात्रा का वर्णन है। 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा' तथा 'मेरी दक्षिण दिग्यात्रा' नामक कृतियों के रचयिता पं. दामोदर शास्त्री ने यात्रा-साहित्य परम्परा को आगे बढाया। प्रथम ग्रन्थ में भारत के पूर्वी क्षेत्र और दूसरे ग्रन्थ में दक्षिण भारत की यात्राओं का उल्लेख है। व्रज के वन-उपवन, मेले-उत्सव तथा मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि का वर्णन करते हुए 'व्रज विनोद' नामक यात्रा ग्रन्थ सन् 1888 ई. में प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र; हरिद्वार की यात्रा- भारतेन्दु ग्रन्थावली(तीसरा भाग); पृ.943

भारतेन्दु के अभिन्न मित्र तोताराम वर्मा द्वारा विरचित है। बाबू देवी प्रसाद खत्री इस समय के प्रसिद्ध यात्रा वृत्त लेखक है। धार्मिक उद्देश्य से की गयी यात्राओं का विवरण 'रामेश्वर यात्रा' तथा 'बदरीकाश्रम यात्रा' नामक ग्रन्थों में समाहित किया है। दक्षिण भारत की यात्रा से सम्बन्धित ग्रन्थ है रामेश्वर यात्रा। डायरी शैली में लिखित इस ग्रन्थ में यात्रा की गई प्रदेश की प्रकृति, संस्कृति, समाज व्यवस्था आदि को स्थान दिया है। दूसरा ग्रन्थ बदरीकाश्रम की यात्रा से संबंधित है; जो यात्रियों के लिए एक पथ प्रदर्शिका है। इसी समय पं.बेगू मिश्र द्वारा रचित काव्यात्मक यात्रावृत्त 'व्रज-यात्रा' का प्रकाशन हुआ जिसमें व्रज का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। इनमें अधिकांश यात्रा-वृत्त भारतीय यात्राओं से ही सम्बद्ध हैं। जिसमें धार्मिक प्रवृत्ति की प्रधानता रही है। गद्य तथा पद्य शैली में लिखित इन यात्रा ग्रन्थों की भाषा का निश्चित रूप नहीं है; इनमें खड़ीबोली तथा व्रज भाषा का प्रयोग किया गया है।

सन् 1900 ई. के बाद यात्रा-वृत्तों की संख्या बढ़ने लगी। सरस्वती, मर्यादा, इन्दु आदि पत्र-पत्रिकाओं में यात्रा साहित्य की धूम मच गयी। सरस्वती में काश्मीर, नेपाल, बनारस तथा मलाबार आदि यात्राओं से सम्बन्धित यात्रा वृत्त प्रकाशित किया। स्वयं द्विवेदीजी ने उसमें 'उत्तरी ध्रुव की यात्रा', 'दक्षिणी ध्रुव की यात्रा' आदि यात्रा वर्णन प्रस्तुत किए हैं। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की अमेरिका यात्रा से सम्बन्धित यात्रावृत्त भी प्रकाशित हुए हैं। इन्दु पत्रिका में बाबू लाल नारायण सिंह द्वारा लिखित 'दक्षिणी ध्रुव की यात्रा' प्रकाशित हुई। मर्यादा पत्रिका के माध्यम से अनेक यात्रावृत्त प्रकाश में आये हैं। श्री मंगलानंद द्वारा रचित 'मिरिच (मारिशस) यात्रा', श्रीमती उमा नेहरू द्वारा लिखित 'युद्ध की सैर', शिवप्रसाद गुप्त द्वारा कृत 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' आदि उनमें प्रमुख हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित इन यात्रा कृतियों के साथ-साथ अनेक यात्रा ग्रन्थ भी उस समय प्रकाश में आए हैं। पाँच खण्डों में प्रकाशित 'भारत भ्रमण' नामक यात्रा

ग्रन्थ उनमें प्रमुख हैं। यह ग्रन्थ श्री साधु चरण प्रसाद द्वारा लिखित है। सम्पूर्ण भारत की यात्राओं से सम्बन्धित यह ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट न होने पर भी पौराणिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस समय देशी यात्राओं का वर्णन भी मिलता है। ठा.गदाधर सिंह द्वारा रचित 'चीन में तेरह मास','हमारी एडवर्ड तिलक (विलायत)यात्रा','रूस-जापान युद्ध (3 भाग) आदि ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। इन ग्रन्थों में चीन, जापान, रूस, लंदन आदि देश की यात्राएँ वर्णित हैं। श्री गंगाप्रसाद गुप्त ने 'लंका टापू की सैर' नामक कृति में देश के रीति-रिवाज़ का सुन्दर वर्णन किया है। गद्य एवं पद्य दोनों शैलियों में लिखित महत्त्वपूर्ण यात्रा ग्रन्थ है पं. रामशंकर व्यास द्वारा रचित 'पंजाब यात्रा'। श्री धनपति लाल द्वारा कृत 'श्रीद्वारिकानाथ यात्रा', पं.तोताराम सनाट्य द्वारा रचित 'फिजी में मेरे इक्कीस वर्ष', बाबू गोपाल राम गहमरी की 'लंका-यात्रा', श्रीधर पाठक का 'देहरादून', श्री शिवपूजन सहाय कृत 'बिहार का विहार', पं. बलरामजी दुबे कृत 'श्री बदरी केदार यात्रा', श्रीमती भवानी देवी कृत 'रामेश्वर यात्रा' आदि यात्रा-वृत्तों के नाम भी उल्लेखनीय है। सत्यदेव परिव्राजक इस समय के महान घुमक्कड़ एवं यात्रा साहित्य रचयिता है। उनके यात्रा ग्रन्थ अमरीका, यूरोप तथा भारत के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र श्री कैलाश-मानसरोवर की यात्रा से सम्बन्धित है। स्वामीजी की पहली यात्राकृति है 'अमरीका-दर्शन'। इसमें वहाँ के नगरीय जीवन,नारी जीवन तथा शैक्षिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। साहित्यिक दृष्टि से अत्यधिक उत्कृष्ट कृति 'मेरी कैलाश यात्रा' उनकी दूसरी यात्रा कृति है। इसमें कैलाश तथा मानसरोवर की साहसिक यात्रा का वर्णन करते हुए लेखक ने खट्टे-मीठे अनुभवों को अंकित किया है। 'अमरीका भ्रमण' नामक कृति में अमरीका के भीतरी अंचल में प्रवेश कर वहाँ के जन-जीवन का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। केदार रूप राय द्वारा रचित 'हमारी विलायत यात्रा' भारत से लंदन तक की समुद्रीमार्ग से की गई यात्रा से सम्बन्धित है। उसमें उन्होंने समुद्री प्रकृति के दृश्य सौन्दर्य को बडी

कुशलता से चित्रित किया है। लंदन एवं पैरिस की यात्राओं से सम्बन्धित श्री. बेणीशुक्ल की कृति है 'लंदन-पेरिस की सैर'। यह वर्णनात्मक शैली में लिखित ग्रन्थ है और इसमें यात्रा के प्रति लेखक का जो उत्साह है वह भी दर्शनीय है। 'अफ्रीका यात्रा' नामक रचना भी इसी श्रेणी की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। यह श्री. मंगलानन्द पुरी सन्यासी द्वारा रचित ग्रन्थ है। बारह अध्यायों में विभक्त इस कृति में अफ्रीकी जीवन का संपूर्ण वृत्तान्त दर्शनीय है। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी यात्राओं को लिपिबद्ध कराने का प्रयास किया। 'रूस की सैर' तथा 'आँखों देखा रूस' इसका प्रमाण है। 'रूस की सैर' नामक कृति में उन्होंने रूस के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जीवन पर प्रकाश डाला है। 'आँखों देखा रूस' यात्रा विषयक निबन्धों का संग्रह है। श्री मेहता जैमिनी भी इसी श्रेणी में आनेवाले एक प्रमुख यात्रा साहित्यकार है। 'श्याम देश की यात्रा' तथा 'अमरीका अर्थात् पाताल देश की यात्रा' उनके प्रमुख यात्रा ग्रन्थ है।

इस प्रकार राहुलजी के पूर्ववर्ती यात्रा साहित्यकार अपनी लेखनी से इसी विधा को समृद्ध कराने का प्रयास किया है। इनमें राष्ट्रीयता का गुण विशेष रूप से देखा जा सकता है। इसी समय विदेश-यात्राएँ पूर्वापेक्षा अधिक लिखी गयीं। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक जैसे लेखक राहुल युग में भी अपने यात्रानुभवों को लिपिबद्ध कराने का प्रयास करते रहे।

1.5.2 राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य

विश्व के महान यायावर राहुल सांकृत्यायन (9 अप्रैल सन् 1893ई. - 14 अप्रैल सन् 1963 ई.) का स्थान हिन्दी यात्रा साहित्य के इतिहास में सर्वोपरि है। उन्होंने हिन्दी यात्रा साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान कर परवर्ती यात्रा ग्रन्थकारों का मार्ग प्रशस्त किया है। उन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष के अतिरिक्त नेपाल, जर्मनी, जापान, तिब्बत, ईरान आदि विभिन्न देशों का भ्रमण करके अपनी अनुभव-संपत्ति को बढ़ाया। साथ ही अपने लेखकीय

व्यक्तित्व को निखारा। श्री देवीचरण रस्तोगी ने राहुलजी के सम्बन्ध में लिखा है - *"यात्रा वर्णन लिखनेवाले साहित्यकों में राहुलजी का नाम सबसे आगे आता है। देश-विदेश के अनुभवों का जब यह वर्णन करते हैं, तो उनकी शैली और अधिक रसात्मक हो जाती है। वास्तव में इस रसात्मकता का आधार इनका अनुभव रहता है।"*[1] वस्तुत: देश-विदेश के भ्रमण द्वारा मिली हुई अनुभव सम्पत्ति ही राहुलजी को एक श्रेष्ठ यात्रा साहित्यकार का स्थान देने में सहायक रहा। राहुलजी की बहुमूल्य यात्रापरक कृतियाँ निम्नलिखित हैं:-

1. मेरी लद्दाख यात्रा
2. लंका
3. तिब्बत में सवा वर्ष
4. मेरी यूरोप यात्रा
5. जापान
6. मेरी तिब्बत यात्रा
7. यात्रा के पन्ने
8. एशिया के दुर्गम भूखण्डों में
9. इरान
10. सोवियत भूमि
11. सोवियत मध्य एशिया
12. रूस में पच्चीस मास
13. किन्नर देश में
14. दोर्जेलिङ् परिचय
15. गढ़वाल
16. जौनसार देहरादून
17. कुमाऊँ

---

1. देवीचरण रस्तोगी; हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास; पृ. 284

19. चीन में क्या देखा

20.. चीन के कम्यून।

राहुलजी की यात्रा सम्बन्धी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

मेरी लद्दाख यात्रा:

इस कृति में सन् 1926 ई. को लद्दाख में की गयी यात्रा का वर्णन है। मेरठ, पंजाब, मुलतान, देरागाज़ीखाँ, पूँछराज्य और कश्मीर के भ्रमण के उपरांत लेखक जोजीला पारकर लद्दाख पहूँचा था। लद्दाखियों का तिब्बत से कैसा सम्बन्ध है इसका भी वर्णन इसमें है। लद्दाख में मुसलमानों के साथ बौद्धों के रहन-सहन का आकर्षक वर्णन भी किया है।

लंका:

इस पुस्तक के कुछ अंश देश-दर्शन सम्बन्धी है तो कुछ यात्रा-वर्णन के रूप में है। अनुराधपुर, पोलन्नारुव या पुलस्त्यपुर, काण्डी के वर्णन में लेखक की ऐतिहासिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। इसमें लंका के निवासियों का रहन-सहन और रीति-रिवाज़ों का भी लेखक ने आकर्षक वर्णन किया है।

तिब्बत में सवा वर्ष:

तिब्बती यात्रा से सम्बन्धित उनकी पहली कृति है। दस अध्यायों में विभक्त इस यात्रा साहित्य में कन्नौज, सारनाथ, लुम्बिनी जैसे प्रदेशों से लेकर नेपाल, ल्हासा तक की यात्राओं का वर्णन है। उनकी तिब्बती यात्रा का उद्देश्य बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन तथा ऐतिहासिक सामग्री की खोज है।

मेरी यूरोप यात्रा:

राहुलजी की यूरोपीय देशों की यात्रायें इसमें समाहित है। समुद्री मार्ग में की गई इस यात्रा का उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार है। इसमें उन्होंने विदेशी व्यक्तियों और वस्तुओं का परिचय देने के साथ देशी व्यक्तियों और वस्तुओं से उनकी तुलना भी की है।

जापान:

इसमें सिंगापुर, हांगकांग, जापान, कोरिया, मंचूरिया आदि की यात्राओं का वर्णन है। उस यात्रा में राहुलजी वहाँ की सामाजिक-सांस्कृतिक बनावट की विशिष्टता से बेहद प्रभावित हए थे।

मेरी तिब्बत यात्रा:

डायरी शैली में लिखित इस ग्रंथ में उन्होंने ल्हासा, चाङ्, ञेनम् आदि के साथ नेपाल की यात्राओं को भी समाहित किया है। तिब्बती संस्कृति, वहाँ की प्रकृति, रहन-सहन आदि का विस्तृत विवरण इस कृति से हमें मिलता है।

यात्रा के पत्रे:

440 पृष्ठवाले इस कृति का प्रकाशन सन् 1952 ई. में हुआ। इसमें राहुलजी की तीसरी तिब्बत यात्रा का वर्णन है। तिब्बत की यात्राएँ उन्होंने वहाँ के मठों में सुरक्षित पुस्तकों एवं तालपत्रों की खोज के लिए की थीं। इसमें राहुलजी के पत्र भी संग्रहीत हैं, जो समय-समय पर भदन्त आनन्द कौसल्यायन को लिखे थे। राजस्थान बिहार शीर्षक के अन्तर्गत लेखक की राजस्थान के विभिन्न स्थानों की यात्राओं का वर्णन भी संकलित है।

एशिया के दुर्गम भूखण्डों में :

इसमें बौद्ध धर्म के चित्रण की ओर लेखक का मन आकर्षित हुआ है। इसमें लद्दाख, तिब्बत, ईरान, अफगानिस्तान की यात्राएँ सम्मिलित हैं।

इरान:

यह कृति दो भागों में विभक्त है। प्राचीन ईरान और नवीन ईरान का वर्णन इन दो भागों से हमें मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति का विशेष महत्त्व है। वर्णनात्मक शैली में लिखित ग्रन्थ है यह।

सोवियत भूमि:

द्वितीय सोवियत यात्रा से लौटकर सन् 1938 ई. में 800 पृष्ठवाले इस कृति का सृजन किया। पाँच बडे-बडे अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक

में सोवियत रूस के इतिहास, भौगोलिक परिवेश, वहाँ के नगर, गाँव, वहाँ की सामाजिक-आर्थिक जीवन के बारे में विस्तार से वर्णन किया है।

सोवियत मध्य एशिया:

तीसरी सोवियत यात्रा से लौटकर राहुलजी ने 'सोवियत मध्य एशिया' नामक पुस्तक की रचना की। उन्होंने खुद यह प्रकट किया है कि भारत के नवनिर्माण का संकल्प लेकर इसकी रचना की। इसमें सोवियत मध्य एशियाई प्रदेशों की सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था का वस्तुगत विश्लेषण किया गया है।

रूस में पच्चीस मास:

यह रूस से सम्बन्धित उनका तीसरा ग्रन्थ है। अनेक बार उन्होंने रूस की यात्राएँ की हैं। उनकी साम्यवादी दृष्टि भी इसमें है। बाद में 'मेरी जीवनयात्रा' नामक उनकी आत्मकथा में इसको समाहित किया है।

किन्नर देश में:

इसमें किन्नर प्रदेश की संस्कृति को अंकित किया है। नवीन भारत के नव निर्माण में इस देश का क्या योगदान है? इस पर प्रकाश डालना लेखक का लक्ष्य है। किन्नरी भाषा का परिचय तथा विभिन्न किन्नरी लोकगीतों का परिचय भी हमें मिलता है। किन्नर देश के विकास के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा - *"किन्नर देश के बारे में मेरा यही विचार है, यदि भारत पीछे नहीं हटा और पीछे हटना असम्भव है, क्योंकि वहाँ मृत्यु घात लगाए हुए है, तो यह किन्नर देश इस शताब्दी के अन्त में देवलोक बनके रहेगा।"*[1] नवीन भारत के नव निर्माण में किन्नर देश किस प्रकार योगदान दे रहा है यह इस कथन से हमें मालूम होता है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ. 1

दोर्जेलिङ् परिचय:

दोर्जेलिङ् के इतिहास और विभिन्न कालखण्डों में इसकी स्थिति का उल्लेख करते हुए सन् 1950 ई. में 'दोर्जेलिङ् परिचय' का प्रकाशन हुआ। 250 पृष्ठवाली इस कृति में दार्जिलिंग के प्राकृतिक रूप, इतिहास, धर्म, यातायात, स्वास्थ्य शिक्षा आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के साथ हिमालय के दुर्गम स्थलों की यात्रा का सुन्दर वर्णन भी है।

गढ़वाल:

सन् 1953 ई. में प्रकाशित इस कृति में बारह अध्याय है।'दोर्जेलिंङ्' परिचय की भाँति इसमें भी भौगोलिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व को प्रधानता दी गई है। मानसरोवर एवं बदरी-केदार यात्रा का सुन्दर वर्णन भी इसमें है।

जौनसार देहरादून:

सन् 1955 ई. में प्रकाशित यह पुस्तक देहरादून जिले के भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक ज्ञान देने में सफल है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर भारत के गणराज्य बनने के बाद के इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया है। बहुपति विवाह प्रथा का उल्लेख भी इसमें है।

कुमाऊँ:

सन् 1956 ई. में प्रकाशित इस पुस्तक में कुमाऊँ की प्राकृतिक सुन्दरता, नगरों, गाँवों एवं पहाड़ों का सजीव वर्णन किया गया है। वहाँ के लोगों की भाषा, धर्म, त्योहार, कृषि, उद्योग, शिक्षा आदि का संपूर्ण ज्ञान इस कृति से मिलता है।

हिमाचल:

दो भागों में विभक्त इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 1993 ई. में राहुलजी की जन्मशताब्दी के अवसर पर कमला सांकृत्यायन के संपादकत्व में हुआ। प्रथम खण्ड में हिमाचल के हर एक प्रान्त का विस्तृत विवरण है तो दूसरे खण्ड में हिमालयी यात्राओं का वर्णन है।

चीन में क्या देखा:

राहुलजी की इस कृति का प्रकाशन सन् 1959 ई. में हुआ। इसमें रंगून, पेंकिंग, मंचूरिया, तुङह्वान तथा मध्य चीन की यात्रा का वर्णन है। इसमें चीन की शिक्षा, कृषि, उद्योग धन्धों के चतुर्दिक विकास आदि का वर्णन है।

चीन के कम्यून:

सन् 1959 ई. में इसका प्रकाशन हुआ। इसमें येनथाङ् कम्यून, लोनान कम्यून, श्वीश्वे कम्यून, पमौ कम्यून, फुङ छाड कम्यून, शानसन कम्यून इन छह कम्यूनों का विस्तृत विवेचन किया गया है। यहाँ कम्यून का मतलब चीनी जनता की एकता है। हरेक गाँव में लोग मिल-जुलकर काम करते हैं।

'कुमाऊँ', 'गढ़वाल', 'दोर्जेलिङ् परिचय', 'हिमाचल' आदि उनकी परिचयात्मक शैली में लिखित रचनाएँ हैं। इसलिए ही इनमें भौगोलिकता अधिक है। 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'लंका', 'तिब्बत में सवा वर्ष' इन तीनों ग्रन्थों का संग्रह 'राहुल यात्रावली' नाम से भी प्रकाशित हुआ। 'घुमक्कड़शास्त्र' नामक कृति द्वारा यात्राओं का सैद्धान्तिक निरूपण भी उन्होंने किया।

इस प्रकार विभिन्न देशों के इतिहास, प्रकृति, समाज, जीवन और संस्कृति का अन्वेषण राहुलजी के यात्रा साहित्य से हमें मिलता है। राहुलजी के यात्रा साहित्य में सहज बोधगम्य भाषा के दर्शन होते हैं, उन्होंने प्रचलित सभी शैलियों का प्रयोग किया है। चित्रात्मक, डायरी, तुलनात्मक, दार्शनिक आदि सभी शैलियों का प्रयोग किया गया है फिर भी वर्णनात्मक शैली की प्रधानता है। राहुलजी की इन यात्राओं ने उनके लेखकीय रूप को निखारा। डॉ. प्रभाकर माचवे के शब्दों में -*"साहित्य की अनेक विधाओं पर इतनी बडी संख्या में रचना कार्य राहुलजी की यात्राओं का परिणाम है। घुमक्कडी उनके लिए वरदान सिद्ध हुई। विश्वपर्यटक राहुल के प्रति हिन्दी जगत सदैव*

नतमस्तक रहेगा।"[1] वास्तव में उनके यात्रानुभव ने ही उन्हें हिन्दी साहित्य में एक सशक्त लेखक का स्थान प्रदान किया। राहुलजी के समान यात्रानुभव अन्य किसी साहित्यकार में देखने को नहीं मिलता।

राहुलजी के समकालीन यात्रा साहित्यकारों में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का नाम उल्लेखनीय है। यद्यपि उन्होंने पूर्व राहुल युग में ही लेखन कार्य शुरू किया था फिर भी उनका पूर्ण विकास राहुलजी के समय में ही हुआ। 'यात्री मित्र' उनकी इसी समय प्रकाशित कृति है। इसमें उन्होंने अनेक उपयोगी बातों पर प्रकाश डाला है, जो यात्रियों को अपनी यात्रा के लिए सहायक हो। राहुलजी के 'घुमक्कड़शास्त्र' के समान यह भी सैद्धान्तिक पहलुओं को आधार बनाकर लिखित ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने लिखा है - *"यदि आपको अपनी यात्रा को सार्थक करना है, यदि उसका सच्चा आनन्द लेना है और यदि आपकी इच्छा है कि आपकी तीर्थयात्रा पुण्य-संचयिनी हो, यदि आप अमरीका और यूरोप-यात्रा की कठिनाइयों को जीतना चाहते हैं तो मेरी इस पुस्तक को अपना साथी बनाइये! यात्रा में ऐसा सच्चा दूसरा मित्र नहीं मिलेगा।"*[2] यह ग्रन्थ यात्रियों के लिए बहुत उपयोगी है, जो उनके शब्दों में निहित है। विदेशी यात्राओं की कठिनाइयों पर उन्होंने प्रकाश डाला है। 'यूरोप की सुखद स्मृतियाँ', 'नई दुनियाँ के मेरे अद्‌भुत संस्मरण', 'अमेरीका प्रवास की मेरी अद्‌भुत कहानी' आदि स्वामीजी की अन्य प्रकाशित यात्रापरक कृतियाँ हैं। इनमें पहला ग्रन्थ यूरोप की यात्रा और अन्य दो ग्रन्थ अमरीकी यात्रा से सम्बन्धित है। यात्रा साहित्य की इसी परम्परा को आगे बढ़ाने में श्री. महेशप्रसाद का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने इरानी संस्कृति को प्रमुखता देते हुए 'मेरी ईरान यात्रा' नामक कृति का लेखन कार्य संपन्न किया। यह कृति ग्यारह अध्यायों में विभक्त है। श्री. गोपाल नेवटिया द्वारा लिखित 'काश्मीर' हिन्दी यात्रा साहित्य की एक अमूल्य निधि

---

1. डॉ.प्रभाकर माचवे; राहुल सांकृत्यायन: व्यक्तित्व एवं कृतित्व; पृ. 156
2. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक; यात्री मित्र; मुख पृष्ठ

है। डाल झील, चंदनबाड़ी, पहलागाँव जैसे प्राकृतिक स्थलों का वर्णन उन्होंने अत्यन्त आकर्षक शैली में प्रस्तुत किया। पं. कन्हैय्यालाल मिश्र का 'हमारी जापान यात्रा', 'ईराक की यात्रा', श्री गणेश नारायण सोमानी द्वारा लिखित 'मेरी यूरोप की यात्रा', श्री सत्येन्द्र नारायण द्वारा लिखित 'दक्षिण भारत की यात्रा' आदि ग्रन्थों का उल्लेख भी है।

इस युग में मौलिक रचनाओं के साथ अनूदित रचनाओं की भी भरमार है। श्री जगमोहन वर्मा इसी श्रेणी में आनेवाले एक प्रमुख यात्रा साहित्यकार है। 'चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण', 'चीनी यात्री सुंञचुन का यात्रा विवरण', 'सुयेनच्याँग' - उनके प्रमुख अनूदित ग्रन्थ हैं। श्री मदनगोपाल गुप्त ने इब्नबतूता नामक सुप्रसिद्ध यात्री के संपूर्ण यात्रा विवरण को 'इब्नबतूता की भारतयात्रा' नाम से अनुवाद किया है। इससे 14 वीं शताब्दी के भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों का चित्रण हमें मिलता है। प्रसिद्ध यात्रावृत्तकार श्री संतरामजी ने भी 'इत्सिंग की भारत यात्रा' नाम से एक अनूदित ग्रन्थ प्रकाश में लाया है। पंजाब सरकार द्वारा पुरस्कृत इस ग्रन्थ से बौद्ध धर्म की विशेष जानकारी मिलती है। श्री रामचन्द्र वर्मा ने श्री. सुशीलचन्द्र भट्टाचार्य द्वारा रचित बंगला कृति 'मानस सरोवर और कैलास' का हिन्दी में 'मानसरोवर और कैलाश' नाम से किया। इसी प्रकार श्री नित्यानारायण बनर्जी की अंग्रेज़ी यात्रा कृति का अनुवाद 'आज का रूस' नाम से श्री ब्रजमोहन वर्मा ने किया। इसमें रूसी जीवन का चित्रण अत्यन्त सजीवता से मिलता है।

संक्षेप में कहें तो राहुल सांकृत्यायन तथा उनके समकालीन यात्रा साहित्यकारों ने भावी यात्रा साहित्यकारों के लिए एक विस्तृत पृष्ठभूमि तैयार की है। इस युग में यात्रा साहित्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहूँचा है। वर्णनात्मकता की प्रधानता होते हुए भी राष्ट्र-प्रेम भारत भूमि के प्रति गौरव-भावना आदि इस युग के यात्रा साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

1.5.3 राहुल सांकृत्यायन के परवर्ती यात्रा साहित्य

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इस विधा को एक स्वतन्त्र एवं सृजनात्मक साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया था। राहुलजी के बाद अनेक नये लेखकों, पत्रकारों तथा भ्रमणार्थियों का रुझान यात्रा साहित्य सृजन की ओर बढ़ा। अज्ञेय, यशपाल, दिनकर, राजावल्लभ ओझा, भगवत शरण उपाध्याय, देवदत्त शास्त्री, विष्णु प्रभाकर, निर्मल वर्मा, काका साहब कालेलकर, श्रीकान्त वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, नगेन्द्र, गोविन्द मिश्र, इन्दु जैन, अजित कुमार, विष्णु चन्द शर्मा, आलोक मेहता, कुलदीपचन्द अग्निहोत्री, राजेन्द्र अवस्थी आदि रचनाकार यात्रा लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। अज्ञेय कृत 'अरे यायावर रहेगा याद', 'एक बूँद सहसा उछली', यशपाल कृत 'रूस में छियालीस दिन', 'पडोसी देशों में', विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'जमना गंगा के नैहर में', 'हँसते निर्झर दहकती भट्टी', श्रीकान्त वर्मा द्वारा रचित 'अपोलो का रथ', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना द्वारा रचित 'कुछ रंग कुछ गंध', आलोक मेहता द्वारा रचित 'स्मृतियाँ ही स्मृतियाँ', राजेन्द्र अवस्थी कृत 'हवा में तैरते हुए' आदि रचनाएँ उनमें प्रमुख है। यशपाल की रचनाओं में उनका राजनीतिक दृष्टिकोण सर्वोपरि है। उसी प्रकार अज्ञेय के यात्रा-ग्रन्थों में व्यक्तित्व की छाप अधिक है। डॉ. नगेद्र ने अपने यात्रा वर्णन में विभिन्न देशों के विश्वविद्यालयों के हिन्दी-शिक्षण की अवस्थाओं का निरूपण किया है। आलोक मेहता जैसे रचनाकारों ने तथ्यों को प्रमुखता दी है। संक्षेप में कहें तो राहुलजी के परवर्ती यात्रा साहित्य लेखकों के वैयक्तिक अनुभवों, संवेदनाओं, विचारों व चिन्तन प्रक्रिया को प्रधानता देते हैं। श्री राहुल की रचनाओं में विभिन्न देशों की संस्कृति, राजनीति, दर्शन, कला साहित्य आदि का जितना विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है उतना अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देता। राहुल सांकृत्यायन ने लगभग बीस दर्जन ग्रंथों की रचना करके हिन्दी यात्रा साहित्य को समृद्ध किया है; बाद में किसी ने भी उतने ग्रन्थों की रचना नहीं की।

1.6 निष्कर्ष

यात्री की यात्रानुभूतियों को जब कलात्मक रूप देकर संवेदना के साथ प्रस्तुत किया जाता है, तब यात्रा साहित्य की सृष्टि होती है। विश्वसंस्कृति, प्रकृति के विराट सौन्दर्य, मानव-जीवन की पूर्णता आदि को अपने में समाविष्ट करने के कारण 'यात्रा साहित्य' विधा हिन्दी साहित्य में अपना अलग अस्तित्व रखता है। यात्रा साहित्य का प्रारंभिक रूप वैदिक ग्रन्थों एवं संस्कृत ग्रंथों से मिलता है। हिन्दी साहित्य में अन्य विधाओं की भाँति उन्नीसवीं शताब्दी में ही यात्रा साहित्य विधा का प्रारंभ हुआ। इसका प्रारंभिक रूप हस्तलिखित रूप में है, जिनमें गद्य की अपेक्षा पद्य की प्रधानता है। धीरे-धीरे इस विधा ने स्वरूप की दृष्टि से उत्तरोत्तर प्रगति की है, साथ ही एक सृजनात्मक विधा के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित की है। महापंड़ित राहुल सांकृत्यायन, सत्यदेव परिव्राजक, अज्ञेय, काका साहब कालेलकर, यशपाल, नगेन्द्र, निर्मल वर्मा जैसे साहित्यकारों ने इसे सृजनात्मक बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। प्रारंभ में इसमें तथ्यात्मकता एवं वर्णनात्मकता की प्रधानता थी। राहुल सांकृत्यायन, सत्यदेव परिव्राजक जैसे यात्रियों के यात्रा वृत्तों से यह विदित होता है। राहुलजी यात्रा के छोटे-छोटे ब्यौरे को भी पूरी तन्मयता से प्रस्तुत किया करते थे। उनकी दृष्टि प्रारंभ में बाहरी परिवेश और घटनाओं पर अधिक रहती थी। आगे चलकर यह प्रवृत्ति कम हो गई और अनुभवों, विचारों, संवेदनाओं की रागात्मक अभिव्यक्ति प्रमुख हो गयी। फिर भी हिन्दी यात्रा साहित्य समस्त सृजनात्मक संभावनाओं को उद्‌घाटित करते रहे हैं।

दूसरा अध्याय
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य का स्वरूप विवेचन

सारांश : *राहुलजी के संपूर्ण यात्रा साहित्य का अध्ययन-विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है। देशगत आधार पर राहुलजी के यात्रा साहित्य को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया गया है - भारत, तिब्बत, रूस, चीन तथा अन्य विदेशी यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य।*

दूसरा अध्याय
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य का स्वरूप विवेचन

भारतीय वाङ्मय के प्रतिष्ठित व्यक्तित्व महापण्डित राहुल सांकृत्यायन अपने उज्ज्वल कृतित्व की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में अप्रतिम स्थान के अधिकारी हैं। हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। उनके व्यक्तित्व की सबसे उभरती हुई विशेषता उनकी यायावरी वृत्ति है। यात्राओं ने ही उन्हें लेखक बनाया। राहुलजी ने घुमक्कडी धर्म को विश्व की सर्वश्रेष्ठ वस्तु माना था। बचपन में नाना रामशरण पाठक से सुनी यात्रासम्बन्धी कहानियाँ राहुलजी के मन में घुमक्कडी का अंकुर पैदा होने का एक कारण है। राहुलजी ने अपनी पाठ्यपुस्तक में नवाज़िदा वाज़िंदा की कहानी 'खुदराई का नतीजा' पढ़ी। जिसमें एक शेर था -

'सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?
जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर, कहाँ ?'

यह शेर उनके मन में यात्रा प्रेम जागृत करनेवाला दूसरा कारण था। वास्तव में शैशव विवाह से उदासीन होकर घर से भागने का निश्चय किया।

सन् 1903 ई. में दस वर्ष की आयु में वे बनारस शहर देखने के लिए निकले। फिर 1906 ई. में पुन: बनारस की सैर तथा 1909 ई. में कलकत्ता घूम आना उनकी बचपन की यात्राएँ थीं। सन् 1910 की हिमालय यात्रा से उनकी नियमित यात्राओं का प्रारंभ होता है जो 17 साल में थी। हिमालय की इस यात्रा के बाद सन् 1921 ई. तक उन्होंने भारत के विभिन्न

नगरों की यात्रा की। सन् 1926 ई. में पुन: हिमालय घूमने के लिए निकले।

राहुलजी की विदेशी यात्राओं का आरंभ सन् 1923 ई. से होता है। पहले वे नेपाल गए। फिर बौद्ध धर्म के आकर्षण से लंका यात्रा तथा बौद्ध ग्रन्थों की खोज में तिब्बत की यात्रा की। उन्होंने तिब्बत की यात्रा चार बार की है। बौद्ध धर्म के प्रचारण के लिए तथा पाश्चात्य सभ्यता से अवगत होने के लिए यूरोप की यात्रा की। तिब्बत के बाद सोवियत भूमि से उनका विशेष प्रेम था। इस भूमि में तीन बार विचरण किया। इनके अतिरिक्त जापान, लद्दाख, ईरान और चीन की यात्रा करके उन्होंने घुमक्कड़ी धर्म को श्रेष्ठ बनाया। उन्होंने घुमक्कड़ी को रस कहा है और काव्यानन्द से उसके आनन्द की तुलना की है।

राहुलजी की यायावरी वृत्ति उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को निर्मित करती है। उनके यात्रा साहित्य में यह सर्वत्र विद्यमान है। वास्तव में उनके कथा साहित्य के सूत्र इन यात्रा विवरणों से विकसित है। सन् 1926 ई. से लेकर सन् 1958 ई. तक के 32 वर्षों में उन्होंने देश-विदेश की विभिन्न यात्राएँ की और बीस यात्रा कृतियों का सृजन भी किया है। देशगत आधार पर राहुलजी के संपूर्ण यात्रा साहित्य को पाँच श्रोणियों में विभाजित किया जा सकता है।

2.1 भारतीय यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य।

2.2 तिब्बती यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य।

2.3 सोवियत यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य।

2.4 चीन यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य।

2.5 अन्य विदेशी यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य।

2.1 भारतीय यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

भारतीय यात्राओं के अन्तर्गत मुख्यतया उनकी हिमालय यात्राएँ आती हैं। अपनी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने विभिन्न देशों का भ्रमण किया। जो लगाव उन्हें हिमालय पर्वत से था वह अन्यत्र कहीं नहीं। उनकी

भारतीय यात्राओं की क्रमबद्ध सूची निम्नलिखित है :-

2.1.1 मेरी लद्दाख यात्रा

2.1.2 किन्नर देश में

2.1.3 दोर्जेलिङ् परिचय

2.1.4 गढ़वाल

2.1.5 जौनसार देहरादून

2.1.6 कुमाऊँ

2.1.7 हिमाचल

2.1.1. मेरी लद्दाख यात्रा

राहुल सांकृत्यायन की यात्रा सम्बन्धी पहली कृति है 'मेरी लद्दाख यात्रा'। आर्य समाज के प्रचारक रामोदार दास के नाम से उस समय ख्यात राहुलजी ने सन् 1926 ई. में लद्दाख की यात्रा की। उनकी इस यात्रा का प्रारंभ मेरठ से हुई थी और पंजाब, मुलतान, देरागाज़ीखाँ, सीमान्त को पार करते हुए 'जोजीला' के रास्ते लद्दाख में प्रवेश किया। लाहुल एवं कुल्लू का वर्णन भी इस ग्रन्थ में है। उन्होंने इस खतरनाक यात्रा का वर्णन अत्यन्त खुबसूरत ढंग से चित्रित किया है। स्वयं राहुलजी ने लद्दाख के रास्ते की कठिनता को व्यक्त किया है - *"धीरे-धीरे पैरों से नापते, मालूम होता था युगों में रास्ता कट रहा है। पन्द्रह हज़ार, सोलह हज़ार, सत्रह हज़ार, अठारह हज़ार फीट पर पहूँचना कहने में आसान मालूम होता है, लेकिन ये हर एक हज़ार फीट मनुष्य और पशुओं के फेफडे, पैरों और पुट्ठों पर कितना असह्य भार, कितनी पीडा पैदा करते हैं इसका आभास भी शब्दों द्वारा चित्रित करना मुश्किल है। खर्दोड जोत अठारह हज़ार फीट ऊँचा है और इसे तिब्बत के कठिन जोतों में गिना जाता है।"*[1] लद्दाख यात्रा की इस कठिनता को उन्होंने अपनी आत्मकथा में व्यक्त किया है। इतनी कठिनाई

1. कमला सांकृत्यायन (सं.); राहुल वाङ्मय, खण्ड-1, मेरी जीवन यात्रा-जिल्द-1; पृ. 291

को झेलते हुए भी उन्होंने इस यात्रा का सुन्दर वर्णन इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया है। इसमें लद्दख की सांस्कृतिक जीवनधारा एवं भौगोलिक परिस्थितियों का व्यापक परिचय मिलता है।

राहुलजी ने केवल लद्दाख की ही नहीं अपितु यात्रा में आये हुए अन्य स्थानों की भी भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सौन्दर्य,सभ्यता, वहाँ के लोगों की वेश-भूषा, रहन-सहन, भाषा तथा परम्पराओं का वर्णन किया है। मेरठ का वर्णन करते हुए मेहतर और चमार जातियों की शरीर-वस्त्र-सम्बन्धी सफाई पर भी प्रकाश डाला है। इन अछूत जातियों के उत्थान के पीछे ईसाई मिशनरियों का हाथ है। ईसाई पाठशाला में पढ़नेवाली लड़कियों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा - *"ये सभी लड़कियाँ सिर्फ दो जातियों मेहतर और चमार की हैं। हिन्दु जाति की इन उपेक्षित और घृणा से देखी जाती हुई जातियों की इन लड़कियों की शरीर-वस्त्र-गृह-सम्बन्धी सफाई देखकर मेरे एक साथी ने कहा, 'ऐसी सफाई तो ऊँचे तबके के शिक्षित हिन्दुओं की लडकियों में भी मिलना मुश्किल है, साथ ही हर जगह हर एक चीज़ में सादगी और कमखर्च को सामने रखा गया है। भोजन जो कि शुद्ध, सादा हिन्दुस्तानी होता है - लडकियाँ स्वयं पकाती हैं। कपड़ा बुनना, टोकरी बनाना, मोजे बुनना, सिलाई आदि स्त्रियों के उपयुक्त हस्तशिल्प की भी उन्हें शिक्षा दी जाती है।' अछूत जातियों को पशुता से उठाकर इस प्रकार देवता बनाने का प्रयास ईसाई भाइयों की ओर से देखकर हृदय उनके प्रति कृतज्ञता से भर जाता है।"*[1] चाहे देशी हो या विदेशी अच्छी बातों की प्रशंसा करने में कोई हिचकिचाहट नहीं। राहुलजी का यह व्यक्तित्व अत्यन्त सराहनीय है।

लद्दाख में मुसलमानों के साथ बौद्धों के रहन-सहन का आकर्षक वर्णन किया गया है। *"मुसलमान बौद्धों के हाथ का पानी नहीं पीते। उधर बौद्ध और उनके बडे-बडे लामा महन्त मुसलमानों का जूठा तक खा जाते*

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 3

हैं। इसकी वजह से बौद्ध मुसलमानों को अपने से ऊँचा समझते हैं और उनके साथ अपनी लड़की की शादी होते बुरा नहीं मानते।"[1] लद्दाखी लोगों के रीति-रिवाज़ और विवाह का भी वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। सन् 1926 ई. में लिखित इस ग्रंथ में उस समय के लद्दाख की पूरी झाँकी मिलती है।

2.1.2 किन्नर देश में

'किन्नर देश में' सर्वप्रथम इण्डिया पब्लिशर्स, प्रयाग द्वारा सन् 1948 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें लेखक की सन् 1948 ई. के मई-अगस्त में की गयी यात्रा का वर्णन है। श्री जगदीश शर्मा ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में लिखा है - *"किन्नर लोगों के प्रागैतिहासिक परिचय के लिए अभी तक उनकी पुस्तक 'किन्नर देश' ही एक मात्र सर्वमान्य है।"*[2] यह कथन सही है कि यात्रा वर्णन के साथ हिमालय के उस उपेक्षित भाग का परिचय भी दिया था। इस यात्रा में उन्होंने नवीन भारत के नवनिर्माण की दृष्टि से वस्तुओं को देखा-परखा है। 'किन्नर देश में' का आरम्भ जिस वाक्य से हुआ है वह है - *"किन्नर या किंपुरुष देवयोनि है।"*[3] अर्थात् उन्होंने किन्नर देश को देवताओं का देश कहा है। वहाँ सेब, अंगूर, बादाम, आलूचा, बेमी आदि फलों एवं मेवों को उपजाया जाता है। इस ग्रन्थ में उन्होंने यही संकेत दिया है कि ये सब बाहर भेजा तो किन्नर आर्थिक दृष्टि से आगे बन जाऐंगे। ये फल किन-किन स्थानों पर होते हैं? किस महीने में पकते हैं इसकी चर्चा इस कृति में विस्तार से की गई है। वहाँ ताँबा, सुरमा,चाँदी, सीसा, मिट्टी का तेल आदि पाए जाने की सम्भावना भी इस पुस्तक में दर्ज है। इन सभी के साथ वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं भौगोलिक परिस्थिति का वर्णन भी इस कृति में देखने को मिलता है। उन्होंने लिखा है - *"किन्नर देश हिमाचल*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 93
2. जगदीश शर्मा (सं); राहुल को हिमाचल का प्रणाम; पृ. 113.
3. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ.1

का एक रमणीय भाग है जो तिब्बत (भोट) की सीमा पर सतुलज की उपत्यका में 70 मील लम्बा और प्राय: उतना ही चौडा बसा हुआ है। इसकी निम्नतम भूमि 5000 फुट से नीचे नहीं है और ऊँची बस्तियाँ 11000 फुट से भी ऊपर बसी हुई हैं। इसका थोडा ही सा भाग जहाँ मानसून के बादल खुलकर पैर रखने पाते हैं, नहीं तो अन्यत्र उन्हें फूँक-फूँक कर पैर रखना पडता है।"[1] यहाँ किन्नर देश के भौगोलिक बनावट की ओर संकेत किया है। यह भौगोलिक वर्णन राहुलजी के यात्रा साहित्य की सबसे बडी विशेषता है।

राहुलजी को हिमालय से बहुत लगाव था। वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य उन्हें निरन्तर आकर्षित करता रहा। वास्तव में यहीं से मानवता का इतिहास आरम्भ होता है। किन्नर देश के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है - *"चढाई दो मील रही होगी या ज़्यादा, उसे पूरा करने के बाद अब हम देवदारुओं के सुन्दर वन में थे, सारे रास्ते का यह सुन्दरतम भाग था। सारा पर्वतगात्र तुंग सरल सदाहरित देवदारुओं से ढँका था।"*[2] वास्तव में राहुलजी के इन मनोमुग्धकारी दृश्यों का वर्णन पाठकों को इस देश की ओर आकर्षित करता है। इस प्रकार के प्राकृतिक वर्णन के साथ वहाँ की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिचय भी दिया गया है। किन्नर के लोकगीतों एवं लोक भाषा की विस्तृत जानकारी भी मिलती है। सच्चे अर्थों में यह कृति किन्नर लोगों के जीवन का दर्पण है।

2.1.3 दोर्जेलिंङ् परिचय

हिमालय के प्रति बढती आकर्षण के कारण राहुलजी ने हिमालय के विभिन्न प्रान्तों की रचना की। दार्जिलिंग के इतिहास और विभिन्न कालखण्डों में इसकी स्थिति का उल्लेख करते हुए सन् 1950 में 'दोर्जेलिंङ् परिचय'

---

1. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ. 51
2. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ. 36

नामक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ। इस कृति के सम्बन्ध में उनका कथन है - *"'दोर्जेलिंङ्-परिचय' में मैं ने स्थानीय इतिवृत्त, भूगोलादि के साथ पथ प्रदर्शन की बातें भी शामिल कर दी है।"*[1] तेरह अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक का प्रारंभ वहाँ के प्राकृतिक रूप से ही होता है। *"नगाधिराज हिमालय विश्व की सुन्दरतम गिरिमाला है। प्रकृति ने मानो अपने सारे सौन्दर्य को हिमाचल भूमि को प्रदान कर दिया है। हिमालय की सुषमा सभी जगह एक-सी नहीं है, उसमें वैचित्र्य पाया जाता है। अलमोडा, नैनीताल के हिमालय का दृश्य दूसरा है, किन्नर का उससे भिन्न है, दार्जिलिंङ् अपना पृथक सौन्दर्य रखता है।"*[2] यहाँ राहुलजी ने हिमालय के हर एक प्रान्त के सौन्दर्य के बारे में बताया है। अलमोडा, किन्नर, दार्जिलिंग सभी का अपना-अपना सौन्दर्य है। दूसरे अध्याय में इसके प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे अध्याय में वहाँ की जन संख्या, धर्म, जाति और भाषा का उल्लेख करके वहाँ के निवासियों का पूर्ण विवरण दिया गया है। वहाँ बोली जानेवाली भाषाओं की एक सूची भी उन्होंने प्रस्तुत की है। हिन्दू और बौद्ध धर्म वहाँ प्रमुख है। अन्य धर्म बाद में आते हैं। कृषि व्यवस्था और उद्योग-धन्धे के बारे में चौथे अध्याय में बताया गया है। आगे यातायात, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि पर भी विश्लेषण हुआ है। यह कृति दार्जिलिंग नगर की अभूतपूर्ण सुन्दरता और उसके सामाजिक-आर्थिक इतिहास का विद्वत्तापूर्ण विवरण देती है। इस ग्रन्थ की महत्ता का और एक कारण यह है कि उसमें हिमालय यात्रा की तैयारी पर एक अध्याय ही उन्होंने लिखा है, साथ ही हिमालय के दुर्गम स्थलों की यात्रा का रोमांचक वर्णन भी है। यह ग्रन्थ मात्र दार्जिलिंङ् का परिचय ही नहीं देती बल्कि वहाँ के जन-जीवन का गहन अध्ययन भी प्रस्तुत करता है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; दोर्जेलिंङ् परिचय; भूमिका से
2. राहुल सांकृत्यायन; दोर्जेलिंङ् परिचय; पृ. 1

2.1.4 गढ़वाल

पहाडी ज़िन्दगी के प्रति आत्मीयतापूर्ण लगाव के कारण उन्होंने 'गढ़वाल' का लेखन कार्य संपन्न किया। यह कृति सन् 1953 ई. में प्रकाशित है। बारह अध्यायों में विभक्त इस पुस्तक में गढ़वाल का परिचयात्मक वर्णन है। 'दोर्जेलिंङ् परिचय' की भाँति इस ग्रन्थ में भी भौगोलिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व को प्रधानता दी गई है।

राहुलजी ने 'गढवाल' कृति का प्रारंभ करते हुए लिखा है - *"हिमालय को प्राचीनों ने पाँच खण्डों में विभाग किया था -*

"खण्डा: पंच हिमालयस्य कथिता नेपाल-कूर्माचलौ।
केदारोऽ थ जलंधरोऽ थ रुचिर: कश्मीर-संज्ञोऽ न्तिम:।।

जो हैं; (1) नेपाल, (2) कूर्माचल, (3) केदार, (4) जलंधर और (5) कश्मीर। काली नदी से पूर्व नेपाल-खंड है, काली से पश्चिम कूर्माचल या कुमाऊ नन्दाकोट और रामगंगा (पश्चिमी) तक है - जो आजकल अलमोडा और नैनीताल के दो जिलों में विभक्त है। कूर्माचल की पश्चिमी सीमा से जमुना तक अथवा गंगा और प्राय: जमुना का सारा पनढर केदारखंड है, जो मध्यकाल में छोटे-छोटे ठाकुरों (सामन्तों) की 52 गढ़ियों में विभक्त होने से गढ़, गढ़वाल या बावनी कहा जाने लगा।"[1] हिमालय को प्राचीनों ने किस प्रकार विभाजित किया है उसकी ओर राहुलजी ने प्रकाश डाला है। गढ़वाल के बनावट के सम्बन्ध में भी यहाँ उल्लेख किया गया है। गढ़वाल का वर्णन करते हुए लिखा है - *"गढ़वाल की सर्वोच्च भाग सदा हिमाच्छादित रहता है, जो सारे क्षेत्रफल के एक तिहाई के करीब है। यही वह स्थान है, जहाँ कोई प्राणी या वनस्पति नहीं दीखते, और जहाँ प्राचीन काल से सजीव देवताओं का निवास माना जाता है।"*[2] ये हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ राहुलजी को सदा आकर्षित करती हैं। हिमालय ग्रन्थमाला

---

1. राहुल सांकृत्यायन; गढ़वाल; पृ. 1
2. राहुल सांकृत्यायन; गढ़वाल; पृ. 5

लिखने की उनकी प्रेरणा भी यही है। राहुलजी की राय में औद्योगीकरण की सारी संभावनाएँ होने पर भी 'गढ़वाल' भारत के अन्य प्रान्तों की तरह कृषि - प्रधान देश है। शिल्प-उद्योग एवं व्यापार सम्बन्धी विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। यातायात का उल्लेख भी किया गया है। पहाडी प्रदेश होने के कारण सड़कों का बनवाना मुश्किल है, फिर भी उसकी आवश्यकता है। यातायात की सुविधा के लिए राहुलजी ने अनेक सुझाव दिए थे। वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य और शिक्षा के बारे में भी विस्तार से बताया गया है। गढ़वाल जाने के लिए यात्रियों को जो तैयारी होनी चाहिए उस पर भी प्रकाश डाला गया है। मानसरोवर एवं बदरी-केदार यात्रा का सुन्दर वर्णन भी इसमें है।

2.1.5 जौनसार देहरादून

हिमालय पर लिखे गये राहुलजी का चौथा पुस्तक है 'जौनसार देहरादून', जो सन् 1955 ई. में प्रकाशित है। राहुलजी के शब्दों में - *"जौनसार देहरादून देहरादून जिले के बारे में सारी बातें बतलाता है, जो इस पुस्तक के देखने से मालूम होगा।"*[1] राहुलजी का यह कथन सच है। देहरादून जिले के भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक ज्ञान देने में यह कृति सफल है। भौगोलिक परिस्थितियों एवं प्राकृतिक सुन्दरता का वर्णन करते हुए इसका प्रारंभ होता है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर ब्रिटिश शासन और भारत के गणराज्य बनने के बाद के देहरादून के इतिहास पर भी प्रकाश डाला गया है। बहुपति विवाह प्रथा का उल्लेख भी उन्होंने किया। सभी भाइयों की सम्मिलित पत्नी होती है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है - *"पत्नी पर बड़े भाई का सबसे अधिक अधिकार है। पति 'खावन्द' कहे जाते हैं। बच्चे भी अपनी माँ के सभी पतियों को बाबा(पिता) कहते हैं, उनमें भेद करने के लिए उनके काम होते हैं, जैसे: बकरियों में जानेवाला*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; जौनसार देहरादून; भूमिका से

बकरावा बाबा, भेड चरानेवाला भेडवा बाबा, गाय चरानेवाला गायर बाबा, भैंस चरानेवाला मोहषवा बाबा।"[1] तिब्बत में इस प्रकार की पाण्डव विवाह प्रथा होने पर भी वहाँ स्त्रियों का स्थान पुरुषों से ऊँचा है। लेकिन देहरादून की स्त्रियाँ उतना स्वतन्त्र नहीं है। इस प्रकार देहरादून का पूरा विवरण देने के साथ मसूरी का परिचयात्मक इतिहास भी प्रस्तुत किया गया है।

2.1.6 कुमाऊँ

'कुमाऊँ' राहुलजी का सन् 1956 ई. में प्रकाशित हिमालय सम्बन्धी पाँचवाँ ग्रन्थ है। इसमें कुमाऊँ प्रदेश की प्राकृतिक सुन्दरता, नगरों, गाँवों और पहाडों का सजीव वर्णन किया गया है। किन्नर, किरात, नग, खस आदि अनेक प्रागैतिहासिक जातियों का इस स्थान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन जातियों की सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव समस्त पहाडी अंचल पर पडा है, जो आज भी वहाँ के जनजीवन में देखने को मिलता है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर अंग्रेज़ी शासन तक के कुमाऊँ के इतिहास को इस ग्रन्थ में राहुलजी ने विस्तार से चित्रित किया है। कुमाऊँ प्रान्त एक ओर भारत से लगा हुआ है तो दूसरी ओर तिब्बत (भोट) और चीन से। इस भोटान्त प्रदेश का वर्णन उन्होंने किया है। इससे कुमाऊँ लोगों की भाषा, धर्म, त्योहार, कृषि, उद्योग, शिक्षा आदि संपूर्ण ज्ञान मिलते हैं। पहाडी यात्रा की कठिनाइयों पर भी प्रकाश डाला गया है। उनके शब्दों में - *"कटारमल कुछ दूर था। हमारी बस इधर से सर्राटा भरती जा रही थी, इसी समय उधर पहाडी भोट पर दूसरी ओर से दूसरी मोटर आ पहूँची। हमारी बस पहाड से बाहर की ओर थी, ड्राइवर ने बचाने की कोशिश की, अधिक कोशिश करने का अर्थ था सीधे पाताल लोक में पहूँचना। लोगों के रोंगटे खडे हो गये, किन्तु बस की दाहिनी आँख (लैम्प) बलिदान कर ले छुट्टी मिल गयी।"*[2] राहुलजी ने यहाँ कत्यूरी-भूमि की यात्रा में भोगी कठिनाइयों पर प्रकाश डाला है। अन्य

---

1. राहुल सांकृत्यायन; जौनसार देहरादून; पृ. 92
2. राहुल सांकृत्यायन; कुमाऊँ; पृ. 332

सैलानियों को इस प्रकार की कठिनाइयों से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने इस ग्रंथ में यात्रा सम्बन्धी आवश्यक विवरण भी दिया। वहाँ कितने दर्शनीय स्थान हैं, वहाँ दूकानें आदि है या नहीं, भोजन के लिए क्या व्यवस्था होनी चाहिए, यात्रा के लिए कौन सा मार्ग सरल है आदि महत्त्वपूर्ण बातों का विवरण भी दिया है। अन्य हिमालय सम्बन्धी कृतियों की भाँति यह भी इतिवृत्तात्मक शैली में लिखित है।

2.1.7 हिमाचल

राहुलजी की मृत्यु के बाद सन् 1994 ई. में उनकी पत्नी कमला सांकृत्यायन ने 'हिमाचल' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन किया। राहुल सांकृत्यायन जन्म शताब्दी के अवसर पर (सन् 1993 ई.में) इस कृति का प्रकाशन कार्य संपन्न हुआ। संपूर्ण हिमाचल प्रदेश को आधार बनाकर एक ग्रन्थ लिखना और उसका प्रकाशन उनका सपना था। दो खण्डों में विभक्त यह ग्रन्थ ज्ञान का भण्डार है। प्रथम खण्ड में जलंधर, सिरमौर, महासू, बिलासपुर, मंडी सुकेत, कांगडा, चंबा, कुल्लू, कनौर, स्पिति, लाहुल आदि हिमाचल के हर एक प्रान्त का वर्णन है। प्रत्येक प्रान्त के प्राकृतिक रूप, इतिहास, संस्कृति, समाज, धर्म आदि हर एक विषय पर विस्तार से वर्णन हुआ है।

दूसरे खण्ड में राहुलजी की हिमाचल यात्राओं का वर्णन है। किन्नर यात्रा का एक अंश भी इसमें है जिसका प्रकाशन पृथक पुस्तक के रूप में पहले ही हुआ था। इस कृति लिखने के उद्देश्य के बारे में उन्होंने लिखा था - *"हिमाचल पर कलम उठाने के समय मेरा ख्याल केवल रोचक यात्रा लिखने का नहीं था, बल्कि मेरा उद्देश्य था - अपने देश के इस सबसे सुन्दर और भविष्य में समृद्ध भूखण्ड के बारे में हमारे लोगों में जितना अज्ञान मौजूद है, उसे दूर करना।"*[1] दूसरे खण्ड में हिमाचल यात्रा का सुन्दर वर्णन करने के साथ हिमाचल के लोकगीतों एवं लोकभाषा का भी उल्लेख है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; हिमाचल - भाग 2; पृ. 1

वास्तव में हिमालय की नैसर्गिक छटा और अद्‌भुत सौन्दर्य राहुलजी को सदा आकर्षित करते हैं। इन यात्रापरक कृतियों में यह स्पष्ट है। उनकी दृष्टि में नगाधिराज हिमालय विश्व की सुन्दरतम गिरिमाला है। हिमालय यात्रा के अनन्य साधक, पार्वत्य सौन्दर्य के महान प्रेमी, दुर्गम पर्वतीय यात्राओं के महान पर्यटक इस यात्री ने नागाधिराज हिमालय की गोद में ही चिर समाधि ली है।

2.2 तिब्बती यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

राहुलजी की तिब्बत यात्राएँ सर्वाधिक रोमांचक यात्राएँ मानी जाती है। बौद्ध संस्कृति के तिब्बती स्वरूप, लामाओं की परम्परा, तिब्बती चित्रकला के विविध आयाम आदि को शब्दों द्वारा अंकित करने में वे सफल हुआ है। उनकी तिब्बती यात्रा कृतियों के सम्बन्ध में डॉ. जानकी पाण्डेय ने लिखा है - *"उनके यात्रा-वृत्तान्तों में अंकित तिब्बती बौद्ध संस्कृति का बहुलांश आज भी वहाँ चीनी आधिपत्य के बावजूद सुरक्षित नहीं है। ऐसी परिस्थिति में तथ्यात्मक यात्रा-वृत्तान्त तथा तिब्बत से बौद्ध संस्कृति के उनके द्वारा लाये गए अवशेष ऐतिहासिक दस्तावेज़ और सांस्कृतिक धरोहर की गरिमा से मंडित रहेंगे।"*[1] पाण्डेयजी का यह कथन सहीहै कि राहुलजी के तिब्बत यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य वहाँ की संस्कृति एवं समाज का दर्पण है। उनके ये यात्रा साहित्य निम्नलिखित है :-

2.2.1 तिब्बत मे सवा वर्ष

2.2.2 मेरी तिब्बत यात्रा

2.2.3 यात्रा के पन्ने

2.2.4 एशिया के दुर्गम भूखण्डों में

2.2.1 तिब्बत में सवा वर्ष

लंका में रहकर बौद्ध वाङमय के गहन अध्ययन करने पर उन्हें

---

1. डॉ.जानकी पाण्डेय; राहुल सांकृत्यायन: घुमक्कड शास्त्र और यात्रावृत्त; पृ.143

तिब्बत जाने की प्रेरणा मिली। तिब्बती भाषा में अनूदित संस्कृत बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन अन्वेषण ही उनका लक्ष्य था। इस उद्देश्य से उन्होंने सन् 1929 ई. में नेपाल के रास्ते छुपे तिब्बत के ल्हासा पहूँचा जो उनकी सबसे साहसिक और सनसनीखेज यात्रा थी। इसका वर्णन 'तिब्बत में सवा वर्ष' नामक कृति में किया गया है। वास्तव में ब्रिटिश, नेपाल और तिब्बत इन तीनों सरकारों की आँखों में धूल झोंककर ही वे ल्हासा पहूँचे। इस खतरनाक यात्रा का वर्णन करते हुए लिखा है - *"यह नेपाल से तिब्बत जाने का मुख्य रास्ता है। फरी-कलिङ्पोड़ का रास्ता जब नहीं खुला था, तो नेपाल ही नहीं हिन्दुस्तान की भी चीज़ें इसी रास्ते तिब्बत जाया करती थीं। यह व्यापारिक ही नहीं सैनिक रास्ता भी था, इसीलिए जगह-जगह फौजी चौकियाँ और किले बने हुए हैं।"*[1] उनके शब्दों से यह स्पष्ट है कि रास्ता कठिन होने पर भी अपरिचित नहीं थे। इस पुस्तक में यात्रा वृत्तान्तों के साथ तिब्बती जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण लेख-रिपोर्ताजों को भी संकलित किया गया है। यह ग्रन्थ दस अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय भारतीय यात्राओं से सम्बन्धित है, जिसमें कन्नौज, कौशाम्बी, सारनाथ, राजगृह, वैशाली, लुम्बिनी जैसे भारत के प्राचीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र आते हैं। नेपाल यात्रा से सम्बन्धित है दूसरा अध्याय। आगे तिब्बत यात्रा का विस्तार से वर्णन हुआ है। यात्रा वर्णन के साथ भारत और तिब्बत के प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों पर भी प्रकाश डाला गया है। तिब्बत के विभिन्न स्थानों के वर्णन के साथ वहाँ के जनजीवन, राजनीतिक-सांस्कृतिक परिवेश और वहाँ की आर्थिक स्थिति का विस्तार से विवेचन किया गया है। बौद्ध धर्म सम्बन्धी ग्रन्थों की खोज उनकी इस यात्रा का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था। राहुलजी ने अपने सर्वोत्तम यात्रा ग्रन्थ के रूप में इस कृति को माना है।

2.2.2 मेरी तिब्बत यात्रा

सन् 1934 ई. के गर्मियों के दिन में राहुलजी दूसरी बार तिब्बत की

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी जीवनयात्रा - भाग दो ; पृ. 52

ओर गए और सन् 1936 ई. में तीसरी तिब्बत यात्रा की। राहुलजी ने तीसरी बार तिब्बत से लौटने पर इस कृति की रचना की। पत्र शैली में रचित इस पुस्तक में ल्हासा, वाङ्, सक्य, ञेनम्, नेपाल आदि की यात्राओं का सुन्दर वर्णन है। अपने मित्र भदन्त आनन्द कौत्सल्यायन को लिखे एक पत्र से इसका आरंभ होता है। वहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक विशेषताओं को उजागर करने के साथ तिब्बती भाषा पर भी प्रकाश डाला गया है। जैसे: 'ज़रूर ही' शब्द के लिए तिब्बती भाषा में 'इन् - ची - मिन् - ची' शब्द का प्रयोग हुआ था। तिब्बती भाषा के उच्चारण को भी उन्होंने सोदाहरण व्यक्त किया था। जैसे: 'सो - नम् - ग्यल् - म् - छन्' का उच्चारण तिब्बती भाषा में 'सोनम् ग्यंर्ज' है। इस पुस्तक में तिब्बत के प्राकृतिक सौन्दर्य को भी उन्होंने छोड़ा नहीं । उनके शब्दों में *"एक जगह नदी के आर पार सुन्दर इन्द्रधनुष उगा था। सौन्दर्य अद्भुत था। मालूम होता था दो पहाड़ों के स्तम्भ पर रंग बिरंगा मेहराव लगाया गया है।"*[1] महापण्डित राहुल का भावुक व्यक्तित्व यहाँ उभर आया है। इस पुस्तक में तत्कालीन तिब्बती समाज की विवाह-प्रथा को राहुलजी ने पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया था। सभी भाइयों की एक पत्नी होना वहाँ सर्वत्र दिखायी गयी है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है - *"तिब्बत में सभी भाइयों की एक पत्नी होने से घर और सम्पत्ति का बँटवारा नहीं होता।"*[2] वास्तव में सम्पत्ति को न बाँठने के लिए ही यह प्रथा प्रचलित थी। इसमें तिब्बती बौद्ध ग्रन्थों को खोज निकालने में जो सफलता प्राप्त हई, उस पर विस्तार से बताया गया है। सदियों से उपेक्षित और अन्धकार में पडे हुए बहुमूल्य बौद्ध-साहित्य को खोजकर लाने में उन्हें कितना कष्ट सहना पडा, वह अत्यन्त सराहनीय है।

2.2.3 यात्रा के पत्रे

तिब्बत से राहुलजी का अत्यन्त गहरा एवं भावनात्मक लगाव है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी तिब्बत यात्रा; पृ. 52
2. राहुल सांकृत्यायन; मेरी तिब्बत यात्रा; पृ. 113

इसलिए ही सन् 1938 ई. में चौथी बार तिब्बत के लिए प्रस्थान किया। इन यात्राओं के माध्यम से उन्होंने 'यात्रा के पन्ने' नामक पुस्तक लिखा। इसमें यात्राओं के साथ अपने मित्र भदन्त आनन्द कौत्सल्यायन को समय-समय पर लिखे पत्र भी संकलित है। पेरिस, जर्मनी, लंका तथा स्वदेश से लिखे इन पत्रों में समय और समाज का दस्तावेज़ीकरण है, साथ ही स्वदेशी यात्राओं का वर्णन भी है, जो राजस्थान तथा बिहार के अनेक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक निधियों को सामने लाता है। तिब्बती लोगों की कलाप्रियता पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। *"चाहे देखने में कितने ही मलीन और असंस्कृत- से मालूम होते हों, लेकिन जान पडता है, तिब्बती लोगों के खून में कला मिली हुई है। इसलिए वह बड़ी सुरुचिपूर्वक मकानों को सजाते हैं। दीवारों पर रंग और बेल-बूटे का काम, आल्मारियों के ऊपर भी कारु-कार्य और रंग, बर्तन चाहे मिट्टी के हों या धातु के, उनमें भी सौन्दर्य, बैठने-लेटने के आसन और सामने रखी जानेवाली छोटी चाय की चौकियाँ भी नयनाभिराम।"*[1] राहुल महान साहित्यकार होने के साथ सभी कलाओं के प्रति समान रुचि रखनेवाले थे। इसलिए ही उनके यात्रा वर्णनों में विभिन्न देशों के लोगों की कलाप्रियता की जी खोलकर प्रशंसा की गई है। 'अज्ञात तिब्बत' शीर्षक के अन्तर्गत तिब्बत की आर्थिक स्थिति, वहाँ बौद्ध धर्म का प्रवेश, तिब्बत-चीन समझौता, तिब्बत पर भारत का प्रभाव आदि विभिन्न विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। तिब्बत-चीन समझौते पर बल देते हुए उन्होंने लिखा है - *"तिब्बत और चीन के बीच में जो समझौता हुआ है, उसमें तीन चीज़ें मुख्य हैं - (1) तिब्बत और चीन के बीच एक मैत्रीपूर्ण सन्धि, (2) तिब्बत का चीनी अधिकारियों के साथ सहयोग और (3) दलाइ लामा और पण्-छेन् लामा का मिलकर काम करना।"*[2] तिब्बत में भिक्षुओं

---

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 46
2. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ.111

की तुलना में भिक्षुणियाँ ज़्यादा है। राहुलजी ने इसका कारण यही बताया है कि सभी भाइयों की एक पत्नी होने के कारण अविवाहित लड़कियाँ अधिकहै। वे भिक्षुणी बन जाती हैं। इस प्रकार तिब्बत की ऐतिहासिक - सांस्कृतिक मुद्दों को प्रकाश में लाने के साथ वहाँ की सामाजिक स्थिति का परिचय भी दिया है।

सन् 1933 ई. में बड़ौदा प्राच्य सम्मेलन में भाग लेने के लिए वे गए। वहाँ से लौटते समय राजस्थान के ऐतिहासिक स्थानों को देखने की इच्छा हुई। इस कृति में राजस्थान की उस यात्रा का वर्णन भी है। भूकम्प पीडित बिहार, अजमेर, उदयपुर, उज्जैन आदि स्थानों का विवरणात्मक वर्णन उन्होंने प्रस्तुत किया है।

2.2.4 एशिया के दुर्गम भूखण्डों में

'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में' राहुलजी की सन् 1933 ई. से सन् 1937 ई. तक की सभी यात्राओं का संकलन है। इसमें मुख्यतः चार यात्राओं को संकलित किया गया है। पहली लद्दाख यात्रा है, जो 'मेरी लद्दाख यात्रा' नाम से पृथक प्रकाशित है। इसमें लद्दाख के बौद्ध विहारों का विस्तार से वर्णन हुआ है। लद्दाख के प्राकृतिक सौन्दर्य एवं वहाँ के लोगों की वेश-भूषा का भी विस्तृत वर्णन है। दूसरी, तिब्बत की यात्रा है। इसमें ल्हासा, पाङ्, सक्य, ञेनम् तथा नेपाल का वर्णन है। जो राहुलजी द्वारा सन् 1934 ई. में की गई दूसरी तिब्बत यात्रा है। पत्र शैली में इस यात्रा का वर्णन किया था। जिसमें अपनी कठिन यात्राओं एवं जिनकी उपलब्धियों के बारे में सविस्तार वर्णन किया है। इस यात्रा से उन्होंने जो सामग्रियाँ उपलब्ध की है, उन्हें प्रयाग म्यूज़ियम एवं पटना म्यूज़ियम को भेजने के बारे में भी बताया है। तिब्बत के मन्दिरों का वर्णन करते हुए बताया है कि उनमें अधिकांश भारतीय ही लगता है। तिब्बत की सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख भी इस पुस्तक में है। वहाँ पुत्र के अभाव में पुत्री को सम्पत्ति मिलती है। यदि कोई संतान न होता तो किसी दूसरे व्यक्ति को उत्तराधिकारी के रूप में चुनता था।

इस कृति की तीसरी यात्रा ईरान से सम्बन्धित है जो 'ईरान' नामक पुस्तक के रूप में अलग प्रकाशित है। इसमें तेहरान, इस्फहान, शीराज और मशहद नगरों के वर्णन के साथ वहाँ के गाँवों की विशेषता पर भी प्रकाश डाला गया है। इस संग्रह की चौथी यात्रा अफगानिस्तान की है। यह यात्रा सन् 1937 ई. में की थी। अफगानिस्तान का पूरा विवरण देने के साथ इस देश पर ताजिक, उज़बेक, तुर्कमान जातियों के प्रभाव के बारे में भी बताया है। इन सभी यात्राओं में राहुलजी को बहुत परेशानी का सामना करना पडा फिर भी उन कठिनाइयों से जो रस मिला है, उसका वर्णन रोचक ढंग से किया गया है। यह कृति कोई इतिहास ग्रन्थ नहीं है फिर भी एशियाई देशों के इतिहास और सामाजिक जीवन को प्रामाणिक ढ़ंग से समेटने का अच्छा प्रयास इसमें है।

वास्तव में राहुलजी की इन तिब्बत यात्राओं का उद्देश्य ही बौद्ध ग्रन्थों की खोज था। तिब्बत में भारतीय बौद्ध भिक्षिओं द्वारा जिस ज्ञान भंडार को सुरक्षित रखा गया था उसे वापस लाकर भारतीय ज्ञान और संस्कृति की महानतम सेवा उन्होंने की है। उनकी ये यात्रापरक कृतियाँ इसका सबूत है।

2.3 सोवियत यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

राहुलजी ने सन् 1935 ई. में प्रथम बार सोवियत रूस के लिए प्रस्थान किया। उनकी सोवियत यात्राएँ तीन बृहत् यात्रा कृतियों की रचना की प्रेरक शक्ति बनी। वे हैं :-

2.3.1 सोवियत भूमि

2.3.2 सोवियत मध्य एशिया

2.3.3 रूस में पच्चीस मास

इन रचनाओं के लेखन कार्य के सम्बन्ध में कमला सांकृत्यायन ने लिखा है - *"सोवियत संघ और भारत की मित्रता को अखंड बनाये रखने*

के लक्ष्य को लेकर ही उन्होंने 'सोवियत भूमि' और 'सोवियत मध्य एशिया' पुस्तकें लिखीं, जिसमें पहली पुस्तक का हिन्दी के पाठकों ने बहुत स्वागत किया था।"[1] यहाँ कमलाजी ने यह स्पष्ट किया है कि भारत-सोवियत मित्रता को कायम रखने के लिए ही उन्होंने इन कृतियों का लेखन कार्य किया।

2.3.1 सोवियत भूमि

यह ग्रन्थ राहुलजी की सोवियत-रूस यात्राओं का संक्षिप्त रूप है। वे सन् 1935 ई. में प्रथम बार सोवियत भूमि के लिए प्रस्थान किए। राहुलजी ने द्वितीय सोवियत यात्रा से लौटकर सन् 1938 ई. में 'सोवियत भूमि' नामक यह ग्रन्थ लिखा। इसमें अपने निजी अनुभवों के माध्यम से उस देश की बहुविध जानकारियाँ दी थी। राहुलजी के शब्दों में "मेरा पहले विचार था, सोवियत की यात्रा पर ही लिखना। उसी तरह शुरू में कलम भी चली, लेकिन उसके बाद ख्याल आया - *'रूस के बारे में बहुत भ्रम फैला हुआ है और उस भ्रम को फैलाने में बहुत से लोग और संस्थाएँ जानबूझकर सहायक हैं। संक्षिप्त और अधूरे चित्र के होने के कारण मेरी यात्रा के बहुत से भागों को पढ़ कर लोगों की शंकाएँ घटेंगी नहीं' - यह सोचकर मुझे 'सोवियत-यात्रा' की जगह 'सोवियत भूमि' लिखनी पडी।"*[2] राहुलजी का यह कथन इस कृति की महत्ता की ओर प्रकाश डालता है। पाँच बड़े-बड़े अध्यायों में विभक्त इस कृति में सोवियत-रूस के इतिहास, भौगोलिक परिवेश, वहाँ के नगर-गाँव, वहाँ की सामाजिक-आर्थिक जीवन के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है।

पहले अध्याय में लेनिनग्राद जैसे नगरों की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में सोवियत समाज की आर्थिक स्थिति का उल्लेख किया गया है। यहाँ रूस की चार पंचवर्षीय योजनाओं के योगदान का पूरे

---

1. कमला सांकृत्यायन; महामानव महापण्डित; पृ. 93
2. राहुल सांकृत्यायन; सोवियत भूमि; प्राक्कथन से ।

महत्त्व के साथ चर्चा की गई है। लेनिन्, स्तालिन् जैसे रूसी नेताओं का तीसरे अध्याय में विस्तार से वर्णन हुआ है। साथ ही शोलोखोव, अलेक्सी, तोलस्तोय और मायकोवस्की जैसे लेखकों का वर्णन भी है। राहुलजी ने लिखा है - *"सोवियत लेखक और कवि अपनी कला के निर्माण में सारे संसार में सबसे अधिक स्वतन्त्र हैं। शर्त यह है कि वह वास्तविकता से बिलकुल नाता तोडकर गगन-बिहारी बनना न चाहें।"*[1] इस प्रकार उन्होंने सोवियत लेखकों की स्वतंत्रता के बारे में भी बताया है। सोवियत फिल्में एवं नाटकों के बारे में भी लिखा गया है। चौथे अध्याय में सोवियत-रूस की आर्थिक प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। 'चतुर्थ पंचवर्षीय योजना' का तथ्यात्मक विश्लेषण पाँचवें अध्याय में है। इस प्रकार राहुलजी ने सोवियत रूस के अनेक ज्ञानवर्धक लेखों से इस कृति को संपन्न किया है।

2.3.2 सोवियत मध्य एशिया

तीसरी सोवियत यात्रा से लौटकर राहुलजी ने 'सोवियत मध्य एशिया' नामक पृथक पुस्तक की रचना की। इस कृति को लिखने की प्रेरणा के बारे में उन्होंने बताया है- *"इस पुस्तक को पढ़ते वक्त पाठकों को अपने सामने भारत के भारतीय किसानों - मज़दूरों की गरीब-नंगी-भूखी मूर्तियाँ अवश्य सामने रखना चाहिए। सोवियत क्रान्ति ने हमारी ही जैसी जनता पाई थी, और उसकी उसने काया-पलट कर दी। कज़ाक, किर्गिज, उज़्बेक, तुर्कमान और ताजिक जनता के लिए कला की कालरात्रि अतीत की बात हो गई, आज यह विश्व की उन्नत जातियों में सम्मिलित हैं।"*[2] भारत के नवनिर्माण के संकल्प को लेकर राहुलजी ने इस कृति की रचना की। इस पुस्तक में सोवियत मध्य एशियाई प्रदेशों की सामाजिक - राजनीतिक - आर्थिक व्यवस्था का वस्तुगत विश्लेषण किया गया है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; सोवियत भूमि; पृ. 257
2. राहुल सांकृत्यायन; सोवियत मध्य एशिया; 'प्राक्कथन' से

कज़ाकिस्तान, किर्गिस्तान, उज़्बेकिस्तान, तुर्कमानिस्तान एवं ताजिकिस्तान सोवियत मध्यएशिया के पाँच प्रजातन्त्र देश हैं। इन पाँचों प्रजातन्त्रों का भौगोलिक वर्णन, संस्कृति, इतिहास, कृषि, उद्योग, भाषा, साहित्य, कला आदि का विस्तार से वर्णन हुआ है। इस प्रकार इसमें सोवियत रूस की पाँच राष्ट्रीयताओं एवं पाँच राष्ट्रों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर विचार किया गया है।

2.3.3 रूस में पच्चीस मास

यह उनकी तीसरी रूस यात्रा से सम्बन्धित कृति है। सन् 1944 ई. में वे रूस के लिए रवाना हुए। काबुल के रास्ते वे इरान पहूँचे। लेकिन सोवियत वीसा नहीं मिलने के कारण उन्हें सात महीने तक वहाँ रहना पडा। इस कृति के प्रारंभ में इरान का वर्णन है। रास्ते में आनेवाले देश होने के कारण उतने विस्तार से वर्णन नहीं किया। बीच-बीच में इरानी भाषा का उल्लेख किया था - *"जनवरी के अन्त में अभी भी सरदी काफी थी। इरानी बच्चे सूर्य देवता से प्रार्थना करते थे ।*

- खुर्शीदखानम् आफताब कुन्। यक्सेर बिरंज तूये - आब कुन्।
(सूर्य देवी धूप कर । एक सेर चावल पानी में डाल)
मा बच्चह्वाये - गुर्ग एम् । अज़ - सरमाय मी - मुरेम।
(हम बच्चे भेडिया के हैं। सरदी से मर रहे हैं।)"[1]

इरानी भाषा के साथ हिन्दी रूप भी देने के कारण पाठकों के लिए कोई कठिनाई नहीं होती।

पच्चीस मास के सोवियत-रूस प्रवासकाल में राहुलजी ने रूस के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का दौरा किया और भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयताओं का अध्ययन किया। रूस यात्रा के इन गहन अनुभवों को उन्होंने इसमें स्पष्ट किया है। लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में पढाने के लिए उन्हें बुलाया था। लेनिनग्राद के प्राचीन और आधुनिक इतिहास को इसमें विस्तार से अंकित किया है। वहाँ

---

1. राहुल सांकृत्यायन; रूस में पच्चीस मास; पृ. 21

के मज़दूर वर्ग के प्रति आदर भाव को प्रकट करते हुए लिखा है - *"हमारे कमरों को लकडी डालकर गरम करनेवाली स्त्री, हमारे देश की मजूरिन जैसी थी। किन्तु उसके साथ भी प्रोफेसर से चाहे अकदमिक बरान्निकोफ, बराबर का बर्ताव करते हुए उससे हाथ मिलाना, उसके सामने टोप हटाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करना कत्तव्र्य मानते थे।"*[1] सभी लोगों का यह आदर भाव अत्यन्त प्रशंसनीय है। साम्यवादी रूस के जन-जीवन और वहाँ के लोगों की रहन-सहन, खान-पान और रीति-रिवाज़ की पूरी झाँकी प्रस्तुत करने में यह कृति सफल हुई है।

वास्तव में राहुलजी ने सोवियत यात्रा से सम्बन्धित तीन बृहत् कृतियों का लेखन करके हिन्दी यात्रा साहित्य विधा को समृद्ध किया है। ये यात्राएँ 'मध्य एशिया का इतिहास' नामक इतिहास ग्रन्थ को लिखने की प्रेरक शक्ति भी बनी। इस ग्रन्थ के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। वास्तव में उनकी ये यात्राएँ भारत-सोवियत मैत्री का हेतु बन गई। उनके अधिकांश पाठक उन्हें भारत-सोवियत मैत्री का सूत्रधार मानते हैं।

2.4 चीन यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा साहित्य

सन् 1958 ई. में चीन के विभिन्न नगरों एवं गाँवों में घूमकर उन्होंने दो कृतियों का लेखन कार्य किया। चीनी समाज की विशिष्टताओं पर बल देते हुए वहाँ की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का परिचय देना उनका लक्ष्य था। ये कृतियाँ निम्नलिखित हैं :-

2.4.1 चीन में क्या देखा

2.4.2 चीन के कम्यून

2.4.1 चीन में क्या देखा

राहुलजी की यह कृति सन् 1959 ई. में प्रकाशित है। वे सन् 1958 ई. में विभिन्न स्थानों में बैद्ध धर्म सम्बन्धी भाषण देने के लिए चीन सरकार के निमंत्रण पर चीन गए थे। इसमें रंगून, पेकिंग, मंचूरिया, तुङ्ह्वान तथा

1. राहुल सांकृत्यायन; रूस में पच्चीस मास; पृ. 79

मध्य चीन की यात्रा का वर्णन है। साढ़े चार महीने तक की चीन यात्रा का वर्णन इसमें है। चीनी समाज की सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों को देखा और उसकी विशिष्टताओं के संदर्भ में समाजवादी पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का मूल्यांकन भी किया। चीनी समाज के विकास को चित्रित करते हुए भारत में भी समाजवादी शासन की आवश्यकता स्थापित करना उनका लक्ष्य था। इस पुस्तक में चीन की शिक्षा, कृषि, उद्योग-धन्धों के चतुर्दिक विकास आदि का वर्णन है।

2.4.2 चीन के कम्यून

सन् 1958 की चीन यात्रा के बाद राहुलजी ने इस कृति की भी रचना की। सन् 1959 ई. में इसका भी प्रकाशन हुआ। इस कृति के लेखन के सम्बन्ध में उनकी राय है - *"यह छोटी सी पुस्तक मेरी सन् 1958 की यात्रा में 6 कम्यूनों को देखने का परिणाम है। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ।"*[1] वास्तव में यहाँ कम्यून का मतलब चीनी जनता की एकता है। वहाँ हर एक गाँव में लोग मिल-जुलकर ही काम करते हैं। बिना मशीनों की सहायता से उन लोगों ने कृषि में जो प्रगति की है उससे राहुलजी अत्यन्त प्रभावित हुए। इस छोटी सी कृति में येनथाइ कम्यून, लोनान कम्यून,श्वीश्वे कम्यून, पमौ कम्यून, फुङ छाड कम्यून, शानसन कम्यून - इन छह कम्यूनों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

राहुलजी की ये यात्रापरक कृतियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ है जो उनके अन्तिम दिनों में लिखित है। वास्तव में यह यात्रा उनकी अन्तिम यात्रा थी। इसके बाद सन् 1963 ई. में उनका देहावसान हुआ।

2.5 अन्य विदेशी यात्राओं से सम्बद्ध यात्रा-साहित्य

इसके अन्तर्गत मुख्यतया चार यात्रा कृतियाँ आती हैं। वे हैं -

2.5.1 लंका

2.5.2 मेरी यूरोप यात्रा

---

1. राहुल सांकृत्यायन; 'चीन के कम्यून'; भूमिका से

2.5.3 जापान

2.5.4 इरान

2.5.1 लंका

राहुलजी ने सन् 1927-28 में रामोदर दास नाम से श्रीलंका के विद्यालंकार परिवेण (विहार) में उन्नीस मास तक अध्ययन-अध्यापन किया। उस समय वहाँ के ऐतिहासिक स्थलों के बारे में जो यात्रा विवरण लिखा वह 'लंका' नाम से बाद में प्रकाशित हुआ। इस कृति के कुछ भाग देश-दर्शन सम्बन्धी हैं और कुछ यात्रा-वर्णन के रूप में वर्णित किए गए हैं। अनुराधपुर, पोलन्नारुव या पुलस्त्यपुर, कांडी-लंका के इन प्रसिद्ध नगरों के प्राचीन इतिहास को रोचक ढंग से उन्होंने प्रस्तुत किया है। राहुलजी की राय में लंका को पहचानने के लिए अनुराधपुर के दर्शन अनिवार्य है। अनुराधपुर की सबसे प्रिय एवं पवित्र वस्तु जय महाबोधि वृक्ष का वर्णन भी किया है, जिसकी छाया में बैठकर सालों पहले सिद्धार्थ गौतम ने बुद्धत्व प्राप्त किया था। कोलम्बो की सैर तथा समन्तकूट शीर्षक के अन्तर्गत यात्रा वर्णन है। राहुलजी का मत है कि वास्तविक रूप में कोलम्बो का उत्थान पाश्चात्यों के आगमन से ही हुआ था। लंका के सिंहल एवं तमिल लोगों के बारे में इसमें विस्तार से वर्णन किया गया है। भारतीय तमिल लोग वहाँ के रबर या चाय के बगीचों में काम करनेवाले कुली हैं। उनकी असाधारण वृद्धि पर सिंहल लोग भयभीत हैं - *"उनका कहना है कि यदि भारतीयों को वोट का अधिकार दिया गया तो अपनी वर्तमान वृद्धि की गति से बीस-पच्चीस वर्ष में भारतीय (तमिल) ही बहुमत में हो जाएँगे और हम सिंहल अल्पमत में।"*[1] राहुलजी ने सालों पहले ही सिंहल लोगों की इस आशंका को जानने की कोशिश की। लंका के सबसे पवित्र पर्वत शिखर समन्तकूट का वर्णन भी उन्होंने किया है। इस प्रकार यह कृति लंका के भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक जानकारी देने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; लंका; पृ. 71

2.5.2 मेरी यूरोप यात्रा

राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी यूरोप यात्रा' का प्रथम संस्करण सन् 1935 ई. में साहित्य सेवक संघ, छपरा से प्रकाशित हुआ था। प्रथम तिब्बत यात्रा के बाद श्रीलंका लौटकर वे भिक्षु राहुल सांकृत्यायन बने। सन् 1932 ई. में अपने अनन्य मित्र भदन्त आनन्द कौत्सल्यायन के साथ बौद्ध धर्म के प्रचारणार्थ वे इंग्लैंड व यूरोप गए, जीसका वर्णन 'मेरी यूरोप यात्रा' में है। उनकी यात्रा कोलम्बो से जहाज़ में थी। इसमें यूरोप के नगरों का ही नहीं गाँवों का भी सुन्दर वर्णन है। यूरोपीय जीवन के विविध पक्षों का वास्तविक चित्रण इसमें है। लंदन के कैंब्रिज विश्वविद्यालय, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, लंदन टावर आदि स्थानों के बारे में विस्तार से लिखा है। लंदन टावर के ऐतिहासिक महत्त्व एवं उसकी बनावट पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। लंदन पहूँचकर उन्होंने सबसे पहले कार्ल मार्क्स की समाधि को खोज निकाला। उनके शब्दों में *"थोडी देर में छोटी-छोटी (यानी गरीबों की) कब्रों को पार कर हम उस कब्र के सामने पहूँच गए। गरीबों के उद्धार के लिए गरीबों के बीच ही सोना चाहिए; और सो भी एक गरीब की गड्ढे में।"*[1] कार्ल मार्क्स के प्रति उनकी आस्था यहाँ स्पष्ट है।

कैंब्रिज विश्वविद्यालय के विभिन्न कॉलेजों के नाम एवं उनकी स्थापना वर्ष की एक तालिका भी उन्होंने प्रस्तुत की है। तथ्यों के साथ स्थानों का वर्णन राहुलजी के यात्रा साहित्य की सबसे बडी विशेषता है। कैंब्रिज नाम के उद्‌भव के बारे में बताया है कि केम नदी के पुल के सामने इसकी बनावट हुई है। इसलिए ही यह नाम पडा है। उनकी राय में कैंब्रिज और आक्सफोर्ड पहले ईसाई भिक्षुओं का मठ था, बाद में शिक्षा संस्था के रूप में परिणत हो गई। अन्त में पेरिस और जर्मनी के सैर का मार्मिक एव कलात्मक वर्णन भी किया गया है। पेरिस के सबसे बड़े पुस्तकालय

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी यूरोप यात्रा; पृ. 109

बिब्लियोथिक् - नाश्नाल, सोरबेन पेरिस विश्वविद्यालय एवं जर्मनी के मारबुर्ग विश्वविद्यालय का वर्णन भी इसमें हैं।

2.5.3 जापान

यह कृति भिक्षु राहुलजी की सन् 1934 ई. की यात्रा से सम्बन्धित है। इसमें सिंगापुर, हांगकांग, जापान, कोरिया, मंचूरिया, सोवियत संघ और ईरान की यात्राओं का वर्णन है। उस यात्रा में राहुलजी वहाँ की सामाजिक - सांस्कृतिक बनावट की विशिष्टता से बेहद प्रभावित हुए थे। जापानियों ने पाश्चात्यों से विद्या, विज्ञान, उद्योग आदि के क्षेत्र में बहुत कुछ सीखा है, जो उनकी प्रगति के आधार भी है। राहुलजी जापानी ग्राम्य समाज के अध्ययन के लिए डढ़ महीने तक वहाँ के नित्ता गाँव में रहे। नित्ता प्राइमरी स्कूल का वर्णन करते हुए वहाँ की शैक्षिक व्यवस्था का प्रामाणिक विवरण भी दिया 'जापान में बौद्ध धर्म' शीर्षक के अन्तर्गत उन्होंने वहाँ के बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के कारणों पर विस्तार से लिखा है। जापानी लोगों की वेश-भूषा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - *"पुरुष अधिकांश कोट-पतलून पहने थे, लेकिन स्त्रियाँ सभी कीमोनो (लम्बा चोगा) और सुन्दर कमरपट्टी में थीं।"*[1] इस कृति से तोक्यो, नारा आदि नगरों की संस्कृति का निकट परिचय मिलता है, साथ ही जापानी खेती-बारी के स्तर, कृषकों की आम दशा, उनके त्योहार, विवाह आदि विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

2.5.4. ईरान

ईरान नामक कृति दो भागों में विभक्त है - 'प्राचीन ईरान' और 'नवीन इरान'। 'फ्राचीन ईरान' में इरानी राजवंशों का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इस भाग में इरानी सभ्यता के प्रारंभ का उल्लेख करते हुए विभिन्न राजवंश-मद्र-वंश, अखामनशी वंश, यूनानी शासन, अशकानी वंश

---

1. राहुल सांकृत्यायन; जापान; पृ. 56

एवं सासानी वंश का पूरा विवरण दिया था। दूसरे भाग 'नवीन इरान' में सन् 1935 ई. में की गयी यात्रा का वर्णन है। इसमें बाकू, तेहरान, इस्फहान, शीराज का वर्णन है। इसका प्रारंभ समुद्री यात्रा के वर्णन से होता है। राहुलजी का मत है कि प्राकृतिक सौन्दर्य की तुलना में इरान तिब्बत का छोटा भाई है। इरान और तिब्बत की तुलना करते हुए लिखा है - *"ईरान का यह ऊँचा मैदान हरियाली से वैसे ही वंचित है जैसे तिब्बत। दोनों में फर्क इतना ही है कि यहाँ मेहनत करने से कुछ अच्छे फल और मेवा पैदा किए जा सकते हैं।"*[1] इरान में भी तिब्बत जैसे प्राकृतिक सौन्दर्य का अभाव है। इरान के हर एक चीज़ का विस्तार से वर्णन करने के साथ ईरानी नियमों के बारे में भी बताया है। वहाँ एक जगह से दूसरे जगह जाने के लिए जवाज (आज्ञापत्र, राहदारी) की ज़रूरत है। ईरानी लोग बहुत मेहनती और होशियार है। *"ईरान में वर्षा भी बहुत कम होती है और जो पानी नदी या वर्षा से प्राप्त होता है उसे बेकार न जाने देने की पूरी कोशिश की जाती है। नदी के पानी को जिन नहरों के ज़रिए ले जाया जाता है वह भूमि के भीतर-भीतर जाती हैं। थोड़ी-थोडी दूर पर खुदे कच्चे कुओं को भीतर ही भीतर सुरंग खोद कर मिला दिया जाता है, और यही ईरानी नहरें हैं। बरसत के पानी को जमा करने के लिए हर एक घर में पक्का चहबच्चा होता है। नहाने-धोने का सब काम इसी पानी से लिया जाता है।"*[2] वर्षा की पानी को बेकार न जाने देने की जो कोशिश इरानियों ने की है, वह अत्यन्त सराहनीय है। ऐतिहासिक दृष्टि से इरान का भारतवर्ष से सालों पुराना सम्बन्ध है। यह कृति ऐतिहासिक दृष्टि से श्रेष्ठ होने के साथ इरानी जनता के सामाजिक जनजीवन का अंकन भी है।

राहुलजी की इन कृतियों के अलावा 'राहुल - यात्रावली', 'यात्रा निबन्ध संग्रह', 'घुमक्कड़शास्त्र' , 'नेपाल' जैसी यात्रा सम्बन्धी कृतियाँ भी

---

1. राहुल सांकृत्यायन; ईरान; पृ. 81
2. राहुल सांकृत्यायन; ईरान; पृ. 81

प्रमुख है। 'राहुल यात्रावली' में उनकी 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'लंका' तथा 'तिब्बत में सवा वर्ष' ये तीन यात्रापरक कृतियाँ संकलित की गयी हैं। 'घुमक्कड़शास्त्र' यात्रा या भ्रमण के महत्त्व की सूझ और समझ पैदा करनेवाला सैद्धांतिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में राहुलजी ने लिखा है - *"घुमक्कड़ी का अंकुर पैदा करना इस शास्त्र का काम नहीं; बल्कि जन्मजात अंकुरों की पुष्टि, परिवर्धन तथा मार्ग-प्रदर्शन इस ग्रन्थ का लक्ष्य है।"*[1] यहाँ राहुलजी ने 'घुमक्कड़शास्त्र' के महत्त्व पर प्रकाश डाला है। इस कृति का प्रकाशन सन् 1948 ई. में हुआ था। जिससे यह स्पष्ट है कि यह ग्रंथ उनके घुमक्कड़ जीवन के अनुभवों का निचोड है। उन्होंने 'किन्नर देश में' यह स्पष्ट किया है - *"मैं अपने को अवसर-प्राप्त घुमक्कड़ कह सकता हूँ। 1907 ई. (14 साल की आयु) में घुमक्कड़ी अस्थायी थी, किन्तु 1907 ई. में जो घुमक्कड़ी व्रत लिया, तो पाँच वर्ष जबर्दस्ती जेल में बन्द रहने के समय को छोड कर आज तक बराबर घुमक्कड़ी करता रहा। पाँच साल जबर्दस्ती बन्द रहने के भी गिने जायें, तो भी 34 साल घुमक्कड़ी-धर्म की सेवा की है, अब 56 साल लग जाने पर मुझे पेंशन लेने का पूरा अधिकार है। किन्तु जिसने एक बार घुमक्कड़-धर्म को अपना लिया, उसे पेन्शन कहाँ? विश्राम कहाँ? "*[2] यहाँ राहुलजी ने अपने घुमक्कड़ धर्म के प्रारंभ एवं विकास के बारे में बताया है। इन यात्रानुभवों से 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिखने की प्रेरणा उन्हें मिली।

वास्तव में राहुलजी ने 'घुमक्कड़शास्त्र' लिखा और उसमें बनाये हुए सिद्धाँतों का पालन भी किया। इस कृति के प्रारंभ में ही उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि घुमक्कड़ को माता-पिता, पति-पत्नी के बन्धनों को तोडना चाहिए। राहुलजी का प्रथम दाम्पत्य इसका प्रमाण है। सभी बन्धनों को तोडकर ही उन्होंने घुमक्कड़ी का व्रत अपना लिया। राहुलजी ने यह भी

---

1. राहुल सांकृत्यायन; 'घुमक्कडशास्त्र'; प्रथम संस्करण की भूमिका से।
2. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ. 72

बताया है कि घुमक्कड़ के लिए इतिहास, भूगोल आदि के ज्ञान के साथ अंग्रेज़ी, रूसी, फ्रेंच तथा चीनी भाषाओं का ज्ञान भी ज़रूरी है। इस कृति में उन्होंने घुमक्कड़ों को नृत्य, कला आदि सीखने का सलाह दिया है। वस्तुत: इन सभी के ज्ञाता होने के कारण उनके लिए घुमक्कड़ी सरल थी। उनकी यात्रापरक कृतियों में विभिन्न देशों की कला, संस्कृति, भाषा आदि का विवरण देते समय इन सभी विषयों पर उनका ज्ञान प्रमाणित होता है।

'यात्रा निबन्ध संग्रह' तथा 'नेपाल' उनकी अप्रकाशित कृतियाँ हैं।

2.6 निष्कर्ष

मनुष्य की एक स्वाभाविक वृत्ति है घुमक्कड़ी। दुनिया में बड़े-बड़े यायावर हुए। बीसवीं सदी में भारत के घुमक्कड़राज बने राहुल सांकृत्यायन ने देश-विदेश की जितनी यात्राएँ कीं और जितना यात्रा साहित्य लिखा उतना उनके पहले या बाद में अन्य यायावर के लिए संभव नहीं हुआ। उनके पावों में ऐसी जिजीविषा थी जो उन्हें निरन्तर यात्रा के लिए प्रेरित करते रहे। राहुलजी ने देश-विदेश की बार-बार यात्राएँ कीं और उसके आधार पर इतने बृहत् यात्रा साहित्य की सृष्टि की। उन्होंने अपने यात्रा साहित्य में देश की भौगोलिक स्थिति एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ वहाँ की संस्कृति, कला, इतिहास, पुरातत्त्व आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उनकी तिब्बती यात्रा का उद्देश्य प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज थी, उसी प्रकार अध्यापन के लिए वे रूस गए, फिर भी उनकी दृष्टि सभी जगह फैली हुई है। वास्तव में राहुलजी का यात्रा साहित्य विभिन्न देशों की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति को जानने का विश्वकोश है। उन्होंने एक सामान्य पर्यटक से बढ़कर एक साहित्यकार की दृष्टि से स्थानों का वर्णन किया है। इसलिए ही उनकी ये कृतियाँ सूचनात्मक एवं विवरणात्मक होने के साथ साहित्यिकता से भी संपन्न है। यही नहीं भारतीय स्थलों की यात्रा पर केन्द्रित यात्रा साहित्य में भारतीयता की प्रतिध्वनि मुखरित है।

तीसरा अध्याय
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित विभिन्न परिस्थितियाँ

सारांश : विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर राहुलजी के यात्रा साहित्य का विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है। उनके यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक स्थितियों का विस्तृत परिचय इसमें दिया गया है।

तीसरा अध्याय
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित विभिन्न परिस्थितियाँ

राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में लेखक के व्यक्तित्व की अपेक्षा यात्रा-प्रदेश का व्यक्तित्व प्रमुख होता है। वास्तव में यह यात्रा साहित्य की यथार्थता की कसौटी है। अर्थात् उनके यात्रा विवरणों में यात्रा के रोचक दृश्यों के साथ उन प्रदेशों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक स्थितियों का विस्तृत परिचय मिलता है। इन परिस्थितियों के अंकन में कहीं भी अतिशयोक्ति नहीं, वरन् सर्वत्र सत्य एवं यथार्थ है। देश और काल के अनुसार इन परिस्थितियों में भिन्नता पाई जाती है। राहुलजी के यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित विभिन्न परिस्थितियाँ तत्सम्बन्धी अवबोध पैदा करने में पर्याप्त सहायक है।

3.1 सामाजिक परिस्थिति

राहुलजी के यात्रा साहित्य में सामाजिक जीवन का प्रत्यक्ष रूप में साक्षात्कार होता है। उनके यात्रा साहित्य में देश के साथ समाज का या सामाजिक परिस्थिति का विस्तृत परिचय मिलता है। सन् 1926 ई. से लेकर सन् 1958 ई. तक नियमित रूप से उन्होंने जो यात्राएँ की और जो यात्रा साहित्य का सृजन किया उनमें मुख्य रूप से भारतीय तथा विदेशी समाज का अंकन हुआ है। 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'किन्नर देश में','हिमाचल', 'दोर्जेलिंङ् परिचय' जैसी कृतियों में भारतीय समाज का चित्रण किया गया है। तिब्बत सम्बन्धी यात्रावृत्तों में तिब्बतीय समाज मुख्य रूप से अंकित है तो 'ईरान', 'मेरी यूरोप यात्रा', 'रूस में पच्चीस मास', 'चीन में क्या देखा' आदि कृतियों में विभिन्न देशों के समाज मुखरित है।

'मेरी लद्दाख यात्रा' में मुख्य रूप से लद्दाखी समाज का अंकन है। फिर भी मेरठ, पंजाब, मुलतान, देरागाज़ीखाँ, पूँछ राज्य तथा कश्मीर की सामाजिक परिस्थिति का उल्लेख भी है, जो रास्ते में आये हुए देश हैं। राहुलजी का मत है कि मेरठ में चमार जातियों की अधिकता है तो पंजाब में जाट, गूजर, अहीर जैसी वीर जातियाँ बसती हैं। उनमें सबसे ज़्यादा जाट जाति है, शिक्षा के क्षेत्र में भी वे काफी आगे हैं। मुलतान की सामाजिक स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा है - *"मुलतान, सिन्ध और पंजाब प्रान्तों की संधि पर है। इसीलिए यह सिंधियों की घाघरी, जहाँ एक तरफ शामिल है, वहाँ सलवार का भी बिल्कुल अत्यन्ताभाव नहीं है। देहाती लोग अधिकतर मुसलमान हैं। कहीं-कहीं कुछ हिन्दू खेती करनेवाले मिलते हैं। हिन्दू ज़्यादातर शहरों में रहते हैं, और व्यापार तथा नौकरी करते हैं। भाषा न तो पंजाबी है, और न सिंधी।"*[1] यहाँ राहुलजी ने मुलतानी लोगों की जाति, भाषा आदि का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। कश्मीर राज्य के अधीन आनेवाले एक रियासत है पूँछ। वहाँ की सामाजिक स्थिति का परिचय भी उन्होंने दिया है। चावल वहाँ सबसे अधिक पैदा होनेवाली चीज़ है। उसी प्रकार पूँछ गुच्छियों के लिए भी मशहूर है। गुच्छियाँ वास्तव में कुकुरमुत्ते की जाति का एक पदार्थ है। शीतप्रधान देश होने के कारण वहाँ लम्बे बालोंवाली भेड़-बकिरयाँ भी पाली जाती थी। उन्होंने लिखा है - *"बाल और ऊन तो लद्दाख में सर्वव्यापक चीज़ें हैं। खाने में नमक की तरह ये सर्वत्र रहते हैं।"*[2] अर्थात् बाल और ऊन लद्दाख में बहुत अधिक मात्रा में है। वहाँ की भाषा जम्बूवाली डोंगरी थी। इस प्रकार वहाँ की भाषा, उपज आदि पर उन्होंने विस्तार से प्रकाश डाला है। लद्दाख का एक प्रान्त है गर्खुन। वहाँ के दर्द जाति में एक विचित्र रवाज़ है। उस पर प्रकाश डालते हुए राहुलजी लिखते हैं - *"इन जातियों में एक बडा विचित्र रवाज़ है। जब*

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 11
2. राहुल सांकृत्यायन; एशिया के दुर्गम भूखण्डों में ; पृ. 18

किसी के घर लडका होता है तब माता-पिता घर से बाहर नहीं निकलते। पेशाब-पाखाना भी घर के भीतर ही करते हैं; यह अवधि 15 दिन से एक मास तक होती है।"[1] उसी प्रकार सारे लद्दाख में बड़े भाई की शादी होती है। अन्य भाइयों की भी यही स्त्री होती है। यदि सन्तान है तो उसे बडे भाई के ही कही जाती है। घर का मालिक भी वही बड़ा भाई होता है। इस प्रकार लद्दाखी समाज का पूरा अंकन 'मेरी लद्दाख यात्रा' में है।

राहुलजी के यात्रा साहित्य में सबसे अधिक उभरनेवाले समाज है तिब्बतीय समाज। उन्होंने सन् 1929 ई. से लेकर सन् 1938 ई. तक के दस वर्षों में चार बार तिब्बत की यात्रा की। तिब्बती बौद्ध ग्रन्थों की खोज उनका लक्ष्य था फिर भी उनके इन तिब्बत सम्बन्धी यात्रापरक कृतियों से तिब्बत की सामाजिक परिस्थिति का उल्लेख भी हुआ है। तिब्बत के रा लुङ मठ का वर्णन करते हुए उन्होंने बताया है कि वहाँ भिक्षु और भिक्षुणियाँ एक साथ रहते थे। अधिकांश उसी मठ में ही पैदा हुए थे। कौन किसका पुरुष या स्त्री है उस सम्बन्ध में कोई नियम भी नहीं है। इस प्राकर तिब्बती समाज के असुन्दर पक्ष पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। तिब्बत में घर-सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बड़ा लड़का होता है। पुत्र न होने पर पुत्री उत्तराधिकारी होती है। इसके बारे में उन्होंने लिखा है - *"लड़का न होने पर पुत्री मालिक होती है। उसके भी न होने पर किसी दूसरे को उत्तराधिकारी बना सकते हैं, किन्तु गाँव के मालिक का सहमत होना ज़रूरी है। सरकार के पास या स-क्य जैसे राज्य के दफ्तर में हर गाँव के प्रत्येक खेत का नाम (नंबर नहीं, क्योंकि यहाँ अभी तक नक्शा नहीं बना) तथा परिमाण (खेत में बोये जानेवाले बीज के हिसाब से) और मालिक के घर का नाम लिखा रहता है। मालिक घर समझा जाता है, व्यक्ति नहीं। पुत्रों में खेत का बँटवारा न होने से यहाँ दाखिल खारिज का झगडा नहीं।"*[2] यहाँ राहुलजी ने घर और संपत्ति के उत्तराधिकारी

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 71
1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी तिब्बत यात्रा; पृ. 126

के बारे में विस्तार से बताया है। उन्होंने लिखा है - *"तिब्बत में सभी भाइयों की एक पत्नी होने से घर और संपत्ति का बँटवारा नहीं होता।"*[1] बहुपति विवाह अधिक मात्रा में होने के कारण लाहुल की जनसंख्या बढ़ रही है और उस समय वहाँ की आबादी दस हज़ार के करीब है। राहुलजी की राय में सभी भाइयों की एक पत्नी होने पर भी वहाँ स्त्रियाँ बिल्कुल स्वतन्त्र ही है। लेकिन इस प्रकार की विवाह प्रथा होने के कारण वहाँ भिक्षुणियों की संख्या ज़्यादा है। राहुलजी ने इसकी ओर भी संकेत किया है कि वहाँ शत-प्रतिशत लोग मांसाहारी है। वहाँ मांस बहुत सुलभ तो नहीं है। तिब्बतवालों से मछली या चिडिया जैसे छोटे-छोटे जीवियों का मांस नहीं खाया जाता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है - *"तिब्बत में अहिंसा का एक प्रभाव यह पडा है, कि वहाँ मछली और चिडिया जैसे छोटे-छोटे जानवरों का मांस अभक्ष्य समझा जाता है। पढे-लिखों से तर्क करने पर वह यही बतलाते हैं, कि एक प्राण की हिंसा से सौ आदमियों का भोजन हो, वह अच्छा या पाँच प्राणियों को मारकर भी एक आदमी का पेट न भरे वह अच्छा ? लोग मुर्गियाँ पालते हैं, लेकिन खाते हैं केवल उनके अंडों को। नदियों में मछलियाँ हैं, लेकिन उनको प्राय: लोग नहीं खाते, या खाने वालों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते।"*[2] यहाँ राहुलजी ने तिब्बती लोगों के भोजन की ओर इशारा किया है। इस प्रकार 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'यात्रा के पन्ने', 'तिब्बत में सवा वर्ष', 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में' आदि कृतियों में तिब्बत की सामाजिक स्थिति का पूरा अंकन हुआ है।

हिमालय के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण उन्होंने अनेक बार हिमालय यात्रा की है और इन यात्राओं की एक ग्रन्थावली भी प्रस्तुत की है। ये ग्रन्थ उस समय के भारत की सामाजिक परिस्थिति का पूरा विवरण प्रस्तुत करते हैं। इन कृतियों में हिमालय के हर एक प्रान्त की सामाजिक

---

1. राहुल सांकृत्यायन; एशिया के दुर्गम भूखण्डों में; पृ. 88
2. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 51

परिस्थिति का उल्लेख हुआ था। 'जौनसार देहरादून' में देहरादून जिले का पूरा विवरण दिया गया है। देहरादून में मुख्यत: राजपूत, चमार, ब्राह्मण जातियाँ बसती हैं। सभी जातियों में बहुपति विवाह या पाण्डव विवाह प्रथा प्रचलित थी। 8-10 उम्र की छोटी लड़कियों की भी ब्याह होती थी। घर-परिवार की सारी ज़िम्मेदारी उनके कन्धों पर है। साथ ही खेतों में भी काम करना पडता है। उनको घर में सबसे पहले उठना है उसी प्रकार सोना सभी के सोने के बाद। किसी प्रकार का खटपट होने पर स्त्री को छूट या तलाक दी जाती थी। इस प्रकार देहरादून के स्त्रियों की दुर्दशा पर भी राहुलजी ने प्रकाश डाला है। उन लोगों के लिए विवाह भी सभी त्योहारों के समान बड़ा उत्सव है। लड़के का बाप सम्बन्धियों के साथ लड़की के बाप के सामने जाकर रुपया देते हैं। जिसे जीवनधन कहते हैं। विवाह सामान्यतया लड़के के घर में होते हैं। वधु बारात के साथ वर के घर जाते हैं। वहाँ के लोगों की मुख्य आजीविका कृषि और पशुपालन है। मंडुवा, गेहूँ और चावल वहाँ की मुख्य फसलें हैं। गाय-भैंसें एवं भेड-बकरियों के मांस भी वे बिकते थे। वहाँ के लोगों की भाषा जौनसारी है। लेकिन बाहर से जो लोग आकर बसे थे उनकी भाषा हिन्दी है।

'दोर्जेलिंङ् परिचय' में दार्जिलिंग जिले का पूरा विवरण दिया गया है। वहाँ के मूल निवासी रोङ् (लेप्चा) थे। लेकिन कुछ नेपाली भी वहाँ आकर बसे थे। इनके अतिरिक्त तिब्बती, बंगाली, मारवाड़ी, बिहारी लोग भी वहाँ रहते थे। इसलिए ही उनकी मुख्य भाषा बंगाली तथा हिन्दी है। यहाँ के लोगों की आजीविका कृषि और पशु-पालन थे। आलू, चावल, जौ -गेहूँ आदि वहाँ बोये जाते थे। साथ ही नारंगी, अनन्नास, तरकारियाँ भी देखने को मिलता है। गाय, भैंस, घोड़ा, बकरियाँ, भेंड, सूअर आदि का पालन यहाँ हुआ था। दार्जिलिंग में ऊँचाई के अनुसार स्वास्थ्य भी अच्छा होता है। यहाँ के लोगों का एक अभिशाप है मलेरिया। यहाँ पर्याप्त संख्या में अस्पताल और औषधालय है। शिक्षा के क्षेत्र में भी वे पीछे नहीं है।

'कुमाऊँ' नामक कृति में कुमाऊँ जिले का वर्णन है जो नैनीताल और अलमोडा का एक होने से बना है। खेती की सुविधा अधिक होने के कारण वहाँ आबादी बहुत घनी देखी जाती है। वहाँ की मुख्य भाषा कुमाउँनी बोली है। शिक्षा का माध्यम यहाँ हिन्दी है। ब्राह्मण और राजपूत वहाँ की मुख्य जातियाँ हैं। वहाँ की भी मुख्य आजीविका कृषि है। जौ, गेहूँ आदि फसलें बोया जाता है। अप्रैल में बोया और सितम्बर में काटा जाता है। कुष्ठरोग वहाँ की एक बडी समस्या है। शिक्षा में यह जिला उत्तरप्रदेश के आगे बड़े जिलों में एक है। स्त्री शिक्षा के लिए भी वहाँ प्रधानता दी गयी थी।

गढ़वाल की सामाजिक परिस्थिति का पूरा विवरण 'गढ़वाल' कृति से मिला है। वहाँ ब्राह्मण और राजपूत जातियाँ ज़्यादा है। शिल्पकार जातियाँ भी है। सारे गढ़वाल की भाषा गढ़वाली है। शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। गढ़वाल में पुरुषों से स्त्रियाँ ज़्यादा परिश्रमी होती है, घर के भीतर का ही नहीं खोती का भी काम उनके कन्धों पर है। इसलिए समर्थ लोग एक से अधिक स्त्रियाँ रखना चाहते हैं। गढ़वाली भाषा की तीन बोलियों के बारे में भी उन्होंने बताया है:- टिहरी -श्रीनगरी बोली, खाई -जौनपुरी बोली, चौंदकोट - सलाणी बोली। गढवाल में औद्योगीकरण की सारी संभावनाएँ होने पर भी भारत के अन्य प्रान्तों के समान कृषि-प्रधान देश है। वहाँ खरीफ और रब्बी दो प्रकार की फसलें आम तौर से होती थी।

'किन्नर देश में' नामक कृति से हिमालय के उपेक्षित भाग किन्नर की सामाजिक परिस्थिति का उल्लेख हुआ था। यहाँ के लोग मुख्यत: बिस्ट और हरिजन दो भागों में बाँटा जा सकता है। लेकिन यहाँ की सबसे बहुसंख्यक जाति खस है। वहाँ की भिन्न-भिन्न जातियों में ब्याह-शादी के ढंग में भी कुछ अन्तर है। ब्राह्मणों और राजपूतों में कन्या को वर चुनने का कोई अधिकार नहीं है। वहाँ के लोग भी बड़े उत्सवप्रिय हैं। दो-तीन दिन तक मेला चलता है। स्त्री-पुरुष अपनी भाषा में मधुर गीत गाते हुए नाचते थे। जौ, गेहूँ,

धनिया, फाफड़ा, आलू आदि वहाँ बोये जाते थे। सेब, अंगूर आदि भी वहाँ पैदा किए जाते थे। यहाँ भी पाण्डव विवाह प्रथा प्रचलित थी। वहाँ की सबसे मेहनती जाति है कोली जाति। साथ ही वे सबसे अधिक सताये अछूत है। राहुलजी के शब्दों में - *"बड़ी जातिवालों के घर छाड़ ओसारे की छाया तक उनका प्रवेश निषिद्ध है। साधारण पनघट से भी पानी लेने का उन्हें अधिकार नहीं। मेहनत-मजूरी से शिमला आदि में जाकर यदि कुछ पैसा कमाया, तो उन्हें कनेतों (उच्च जाति को) के मकानों की भाँति शिखरदार छत बनाने का हक नहीं। उसके कहने का भाव था - क्या हम मनुष्य नहीं।"*[1] यहाँ राहुलजी ने कोली जाति की दुर्दशा के बारे में बताया है। इस प्रकार किन्नर देश के समाज का पूरा अंकन इस कृति में है।

राहुलजी की अन्य यात्रापरक कृतियों में लंका, जापान, इरान, रूस, चीन एवं यूरोपीय राज्यों की सामाजिक स्थिति का उल्लेख भी है। लंका की सामाजिक स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा गया है - *"ऐसे दृश्य वहाँ बिल्कुल साधारण हैं - पति बौद्ध है तो पत्नी ईसाई माँ ईसाई है तो लडके बौद्ध। धर्म-भेद से उनके पारिवारिक जीवन में कुछ भी अन्तर नहीं पडता।"*[2] यहाँ राहुलजी ने यही बताया है कि लंका में धर्म बदलने पर जाति नहीं टूटती। जाति ही वहाँ मुख्य है धर्म नहीं। लंका के सिंहल लोगों में बहुसंख्यक गोवी जाति के हैं। शिक्षा तथा धन कमाने में वे लोग बहुत बढ़े - चढ़े हैं। वहाँ के लोगों में सामाजिक बुराइयाँ बहुत कम ही दिखाई पडते हैं। विवाह के लिए लड़की को 18-19 वर्ष सबसे कम उम्र है लड़के साधारणतया 29-30 उम्र में ब्याह करते हैं। उसी प्रकार बाल विवाह का नाम भी नहीं और विधवा विवाह इच्छानुसार की जाती थी। दहेज प्रथा भी वहाँ नहीं। शिक्षा के क्षेत्र में भी वे बहुत आगे हैं। लड़के-लड़कियों के लिए प्राइमरी शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य है। सारी लंका में वेश्यावृत्ति कानून से

1. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में ; पृ. 11
2. राहुल सांकृत्यायन; लंका; पृ. 69

मना है। इस प्रकार लंका की सामाजिक स्थिति स्वस्थ और सस्ता है।

लन्दन की सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख करते हए लिखा है - *"लन्दन का पश्चिम - अन्त धनियों और फैशनेबुल स्त्री-पुरुषों का मुहल्ला है और पूर्व अन्त गरीबों का।"*[1] अर्थात् वहाँ बडे-बडे शहरों में पडोसी-पडोसी को नहीं जानता था। जर्मनी की सामाजिक स्थिति की ओर इशारा किया गया है - *"लम्बे-लम्बे जुते हुए खेत और पत्रहीन नंगे वृक्षों की भरमार बतला रही थी कि, जर्मनी सिर्फ कारखानों का ही देश नहीं है।"*[2] यहाँ राहुलजी ने यही बताया है कि उद्योग धन्धों के साथ कृषि भी जापानी लोगों की आजीविका का मुख्य साधन है। फ्रांस और इंग्लैंड में हल जोतने के लिए सिर्फ घोडे का इस्तेमाल किया जाता था लेकिन जर्मनी में बैलों का भी हल जोतने के लिए उपयोग किया करते थे।

'जापान' नामक कृति में उन्होंने बताया है कि वहाँ भी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बड़ा लड़का होता था। छोटों को पिता की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं है। इस सम्बन्ध में राहुलजी का उल्लेख है - *"जापान में दायभाग का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र होता है। छोटे लड़कों को पिता की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं। यदि बड़ा भाई सहृदय होता है, तो एकाध बीघे खेत या दो-चार सौ येन् दे देता है। जीते जी पिता यदि कुछ नकद दे जाता है, तो वह छोटे लड़कों का भाग है। जापानी लोग अपने संयुक्त परिवार पर बहुत गर्व करते हैं, किन्तु यह गर्व करनेवाले ज्येष्ठ संतान ही होते हैं। छोटे लडकों के साथ कितना अन्याय होता है यह समझना बहुत आसान है।"*[3] यहाँ राहुलजी ने जापान के पारिवारिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए वहाँ की सामाजिक व्यवस्था की ओर इशारा किया है। जापानी विद्यालयों की शिक्षा के बारे में भी बताया गया है। वहाँ विज्ञान, इतिहास

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी यूरोप यात्रा; पृ. 86
2. राहुल सांकृत्यायन; मेरी यूरोप यात्रा; पृ. 143
3. राहुल सांकृत्यायन; जापान; पृ. 184

आदि विषयों के साथ उपयोगी कलाओं को भी सीखा है जैसे: लड़कियों को सिलाई की शिक्षा दी जाती है तो लड़कों को बढ़ई, लोहार आदि के काम सिखाये जाते हैं। गाँवों में कृषि सम्बन्धी बातें सीखती है तो शहरों में उनके स्थान पर वाणिज्य तथा कल-पुर्जे सम्बन्धी बातें सिखलाई जाती थी। इस प्रकार जापान की सामाजिक परिस्थिति का विस्तार से विवरण दिया गया था।

चीन की सामाजिक परिस्थिति का उल्लेख करते हुए उन्होंने वहाँ के भोजन के बारे में लिखा है - *"देखा, खाने में चावल है, भीतर चिनी डाली रोटी भी भाप पर बनी मौजूद है और साथ ही मुर्गी या मछली का माँस। यहाँ का किसान क्या खाता है, उसका परिचय मिला।"*[1] यहाँ चीनी भोजन का विस्तृत विवरण दिया गया है। चीन की चिकित्सा के बारे में बताते समय उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि यहाँ सभी दवाइयाँ देश में ही बनती है, केवल विशेष दवाएँ बाहर से मँगायी जाती है। चीन में मुर्दा जलाने की प्रथा नहीं है। जापान के शासन काल में उनको मुर्दा जलाने की आवश्यकता पड़ी। उस समय जापानियों ने पेकिङ में एक श्मशानशाला की स्थापना की। इस प्रकार राहुलजी ने अपनी चीनी यात्राओं से वहाँ के भोजन, स्वास्थ्य आदि की विस्तृत जानकारी प्रदान की है।

3.2 धार्मिक परिस्थिति

महापण्ड़ित राहुल सांकृत्यायन धर्म सम्बन्धी वैज्ञानिक दष्टिकोण रखनेवाले साहित्यकारों में एक है। राहुलजी की विभिन्न देशों की यात्राएँ ही इस प्रकार की धार्मिक दृष्टि उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुई। उनके यात्रा सम्बन्धी कृतियों मे विभिन्न देशों की धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख हुआ है, जो उनके द्वारा अनुभव योग्य थे। 'किन्नर देश में', 'दोर्जेलिङ् परिचय', 'गढ़वाल', 'जौनसार देहरादून', 'कुमाऊँ' जैसी कृतियों में हिमालय के विभिन्न प्रान्तों की धार्मिक परिस्थिति का परिचय दिया गया है। देहरादून

1. राहुल सांकृत्यायन; चीन में क्या देखा; पृ. 13

जिले में हिमालय के अन्य जगहों की तरह हिन्दू को छोडकर अन्य धर्मवाले नाम मात्र के ही पाये जाते हैं। वे हिन्दू होने पर भी उनके अनुष्ठान में बहुत अन्तर है। वहाँ के सबसे बडा देवता महासू है, जिसे विष्णु के छठे अवतार परशुराम से मिलाने की कोशिश की जाती है। वहाँ की धार्मिक स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा है - *"अगर आदमी की किसी से शत्रुता है, तो वह अपने खेत से मुठ्ठी भर मिट्टी ले जाकर महासू के सामने पूजा-प्रार्थना करता है, इसके बाद यदि कोई अनिष्ट हुआ, तो देवता के कोप से डरकर खेत छोड़ देता है। जिन लोगोंने कसम खा ली है, उनकी सन्तानें भी सदा के लिए जाति-बहिष्कृत हो जाती है, और वह आपस में कोई सम्बन्ध नहीं रखतीं, यहाँ तक कि उनके लड़के भी एक ही स्कूल में नहीं पढ़ सकते।"*[1] यहाँ राहुलजी ने देहरादून जिले के लोगों की धर्मान्धता की ओर इशारा किया है।

देहरादून में हिन्दू धर्म को छोडकर शेष सब नाममात्र के हैं तो दार्जिलिंङ में हिन्दू धर्म के साथ बोद्ध धर्म भी मुख्य है। साथ ही ईसाइयों ने इस जिले में शिक्षा संस्थाओं एवं अनाथालयों को खोलकर या दूसरे प्रकार से अपने धर्म के प्रचार करने का प्रयत्न भी किया था।

गढ़वाल में भी हिन्दू धर्म की प्रधानता है, वैसे बौद्ध, ईसाई, मुसलमान आदि थोडे बहुत मिलते हैं। किसी समय वहाँ बौद्ध धर्म की प्रधानती थी। बाद में आकर ब्राह्मण या हिन्दू धर्म का पल्ला भारी हुआ। गढवाल और कुमाऊँ में हिन्दू धर्म के एक ही रूप मिलते हैं। दोनों प्रदेशों में शैव-शाक्त सम्प्रदाय की प्रधानता है। बदरीनाथ (विष्णु), केदारनाथ (शिव), गंगा (गंगोत्री), जमुना (जमुनोत्री) और नन्दादेवी (पार्वती) गढ़वाल के प्रधान देवता या तीर्थ स्थान हैं जो सारे भारत में भी मान्य हैं। इनके अतिरिक्त कुछ स्थानीय देवता भी हैं, जैसे: काली, दुर्गा आदि। कुमाऊँ की भाँति गढ़वाल में भी काली की बलि-पूजा होती थी। वहाँ सिक्ख, जैन, आर्य

1. राहुल सांकृत्यायन; जौनसार देहरादून; पृ. 89

आदि नाम मात्र के ही पाये जाते हैं। मुसलमान सामान्यतया व्यापारिक स्थानों में ही मिलते हैं, जो नीचे से आए हुए हैं।

कुमाऊँ जिले में हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम और ईसाई धर्म के अनुयायी रहते थे। हिमालय का यह प्रान्त बौद्धों के लिए सदा से पवित्र है। भारत की प्राय: सारी पवित्र नदियाँ यहाँ से निकलती है। जैसे: गंगा, यमुना, सरयू, अचिरवती (रप्ती), मही (गंड़क) आदि। इन नदियों का उद्‌गम स्थान होने के कारण धार्मिक दृष्टि से कुमाऊँ का अपना विशेष महत्त्व है।

हिमाचल प्रदेश में देवता एक जीती-जागती संस्था है। इसलिए उनके मन्दिरों का विशेष महत्त्व है। अधिकांश मन्दिरों में पूजारी ब्राह्मण होते हैं। लेकिन किन्नर देश में कनेत लोग भी पूजा कर सकते हैं। यहाँ पूजा से ज़्यादा महत्त्व बलिदान को है। राम-कृष्ण को छोडकर सभी देवताओं को बकरे की बलि दी जाती थी। अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के साथ हिमाचल प्रदेश में ईसाई धर्म का प्रचार भी होने लगा।

राहुलजी की चारों तिब्बती यात्राओं का एक ही लक्ष्य था। बौद्ध ग्रन्थों को खोज निकालना और तिब्बत के बौद्ध विहारों को देखना। इसलिए ही 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में', 'तिब्बत में सवा वर्ष', 'यात्रा के पन्ने' जैसे तिब्बत यात्रा सम्बन्धी कृतियों में वहाँ के बौद्ध धर्म का पूरा विवरण दिया था। उन्होंने तिब्बत के बौद्ध विहारों का वर्णन भी किया है। जैसे: रे डिङ मठ, रा - लुङ् मठ, स-क्य मठ आदि। इन मठों के वर्णन के साथ वहाँ के लामाओं से उनकी बातचीत का भी विवरण है। ये सभी बातें वहाँ की धार्मिक स्थिति की ओर इशारा करती है। 'मेरी लद्दाख यात्रा' में लद्दाख की धार्मिक दशा का विवरण दिया है, साथ ही मुलतान, देरागाज़ीखाँ एवं पूँछ राज्य की धार्मिक स्थिति का उल्लेख भी है। मुलतान में हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलते हैं। देहाती लोग अधिकतर मुसलमान हैं। हिन्दू ज़्यादातर शहरों में रहते हैं और व्यापार तथा नौकरी करते हैं। वहाँ की धार्मिक स्थिति का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है - *"अन्य जगहों*

की भाँति यहाँ के हिन्दु ज़्यादा व्यापार या कलम का व्यवसाय करते हैं। इन सबके ऊपर है फूट का मेवा तथा ऊँच-नीच का भाव। इनकी अपेक्षा मुसलमान अधिक मज़बूत है। उनमें धर्मान्धता भी है, और उस पर उन्हें हिन्दुओं जैसी धनी और भीरु जाति से पाला पडा है।"[1] राहुलजी के इन शब्दों से मुलतान की धार्मिक स्थिति का खुला सा चित्रण मिलता है। मुलतान के हिन्दुओं की दुर्दशा पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। लद्दाख के शिया मुसलमानों के बारे में लिखा है - *"मुसलमान बौद्धों के हाथ का पानी नहीं पीते। उधर बौद्ध और उनके बड़े-बड़े लामा महन्त मुसलमानों के जूठा तक खा जाते हैं। इसकी वजह से बौद्ध मुसलमानों के अपने से ऊँचा समझते हैं और उनके साथ अपनी लडकी की शादी होते बुरा नहीं मानते।"*[2] यहाँ राहुलजी ने लद्दाख की धार्मिक स्थिति का उल्लेख किया है।

'लंका' नामक कृति में राहुलजी ने लंका के हिन्दुओं के बारे में विस्तार से बताया है। उनके मतानुसार लंका के हिन्दुओं में अधिकतर तमिल लोग है जो वहाँ चाय के बगीचों में कुलियों के काम के लिए आते थे। उन्होंने लिखा है - *"यहाँ के हिन्दू समुद्र पार होकर भी वैसे ही कट्टर हैं, जैसा कि मद्रास प्रान्त में। छूत-छात का घृणित तथा अमानुषिक व्यवहार विशेषत: उत्तरी प्रान्त जाफना में असह्य है।"*[3] यहाँ तमिल लोगों की धर्मान्धता की ओर राहुलजी ने प्रकाश डाला है। वहाँ के हिन्दुओं में जहाँ-तहाँ रामकृष्ण मिशन की ओर से काम हो रहा है। ईसाइयों की संख्या बहुत कम है फिर भी उनके द्वारा खोला हुआ स्कूल आदि वहाँ है। कपड़ा आदि का व्यवसाय मुसलमानों के हाथ में है। लेकिन उनमें व्यापारिक बुद्धि बहुत कम है। इस प्रकार राहुलजी ने 'लंका' नामक कृति में वहाँ की धार्मिक परिस्थिति का पूरा विवरण दिया है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 13
2. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 93
3. राहुल सांकृत्यायन; लंका; पृ. 77

'जापान' नामक पुस्तक में जापान के धर्मों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। वहाँ मुख्यत: तीन धर्म थे - शिन्तो धर्म, बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म। एक समय शिन्तो और बौद्ध धर्म मिले जुले थे। अनेक स्थानों में दोनों के मन्दिर भी सम्मिलित थे। हाङ - काङ जैसे स्थानों में ईसाई मिशनरियों का बहुत काम हुआ था। राहुलजी का मत है कि मिशनरियों के बहुत काम होने पर भी वहाँ बौद्ध धर्म का इतना प्रचार है कि गली-गली में भी बौद्ध मन्दिर देखने को मिलता है। उनके शब्दों में - *"सन् 1890 ई. के पहले यह प्रस्ताव भी उपस्थित हुआ था कि जापान को ईसाई धर्म को राजधर्म के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। इतना ही नहीं, बल्कि इसलिए जाँच-कमेटी भी बनी थी; किन्तु बौद्ध धर्म जापान की जातीय आत्मा के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, और जापान की सारी सभ्यता का इतिहास बौद्ध धर्म से इतना ओतप्रोत है, कि उसका छाड़ना उसके लिए आसान नहीं है।"*[1] यहाँ राहुलजी ने जापान में बोद्ध धर्म की प्रधानता पर बल दिया है। इस प्रकार राहुलजी की अधिकांश यात्रा सम्बन्धी कृतियाँ धार्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ है।

3.3 सांस्कृतिक परिस्थिति

राहुल सांकृत्यायन का यात्रा साहित्य सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के साथ विदेशी संस्कृति को भी अपने यात्रापरक कृतियों के माध्यम से प्रकाश में लाने का प्रयास किया है।भारतीय यात्राओं से सम्बन्धित कृतियों में उस समय के भारत की सांस्कृतिक परिस्थितियों का उल्लेख मिलता है। तिब्बत, चीन आदि यात्राओं से उस समय की विदेशी संस्कृति को उजागर करने का प्रयास भी किया है।

'किन्नर देश में', 'गढवाल', 'कुमाऊँ', 'जौनसार देहरादून', 'दोर्जेलिंङ् परिचय' एवं 'हिमाचल' राहुलजी की हिमालय यात्राओं से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में हिमालय की सांस्कृतिक परिस्थिति

---

1. राहुल सांकृत्यायन; जापान; पृ. 118

का उल्लेख हुआ है। हिमालय के विभिन्न प्रान्तों के लोगों की वेश-भूषा में भिन्नता है। 'जौनसार देहरादून' में देहरादून जिले के पुरुषों एवं स्त्रियों की पोशाक पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - *"जौनसारी पुरुषों की पोशाक पास के टेहरी के इलाकों वाले लोगों जैसी पायजामा और ऊपर अंगरखा अब कोट कमीज भी होती है। स्त्रियाँ अपनी पुरानी पोशाक को अब भी कायम किए हुए हैं। वह नीचे लहँगा पहनती हैं, ऊपर किनारा लगे हुए सामने फटा कोट होता है, जो कुछ-कुछ 5 वीं 6 वीं सदी के कूचा (चीन मध्य एशिया) की स्त्रियों जैसा होता है। सिर पर वह रूमाल बाँधती हैं। ज़ेवर अधिकतर चाँदी के होते हैं। नाक में बड़े नथ और नथुने के बिचले छेद में पत्ते वाली बुलाक होती है। नाचने-गाने से उन्हें बड़ा प्रेम है।"*[1] किन्नर लोगों की आभूषण प्रियता पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है - *"सभी स्त्रियाँ चाँदी के जेवरों से लदी थीं। कानों में पाव-पाव भर चाँदी की बालियों के गुच्छक, कंठ में जंजीरें और मालाएँ, बायें कन्धे के नीचे दोरु (पहाडी ऊनी साडी) को समेट कर बाँधनेवाले हथेली भर के मयूर-चित्रक शोभा दे रहे थे। पीठ पर पतली रस्सी की तरह बटे केशों के लम्बे फूँदने पेंडुली के पास तक लटक रहे थे। फूँदने अधिकतर लाल सूत के थे, किन्तु कुच में चाँदी के घुँघरू बाँधे हुए थे। साडी का चुनाव किन्नरियाँ मध्य देशिकाओं की भाँति आगे नहीं, पीछे रखती हैं और कोली साडी के इस छोर को बुनने में अपनी सारी कला और सारे रंग को खर्च कर देते हैं।"*[2] संभ्रान्त कुलीन महिलाएँ चाँदी के बालियों के गुच्छकों की जगह सोने की बालियाँ पहनी हुई थीं। पहाडी लोग बडे उत्सवप्रिय हैं। वहाँ कई प्रकार की मेलायें होती थीं। फसल काटते समय या देवताओं के उत्सव के समय वहाँ के लोग एक जगह जमा होकर मेलायें मनाते थे। ये सभी बातें वहाँ की सांस्कृतिक परिस्थिति की ओर इशारा करता है। मेले का वर्णन इस प्रकार किया गया है - *"देवता की*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; जौनसार देहरादून ; पृ. 95
2. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में ; पृ. 11

पालकी ऐसी होती है, जिसके ऊपर जेवरों और कीमती कपडों से सजा हुआ देवता का चेहरा या चेहरे रखे रहते हैं। पालकी के बीच से दो लंबे-लंबे भूर्जपत्र या किसी और दुरख्त के लचकदार लंबे डंडे लगे रहते हैं, जिसे आदमी अपने दोनों कंधों पर रखकर उठाते हैं। पालकी इधर या उधर लटककर देवता के अभिप्राय को प्रकट करती है। यात्रा के लिए निकलते समय आगे-आगे बहुत से लोग नंगी तलवार या दूसरी चीज़ें लेकर चलते हैं, साथ में बाजा बजता रहता है। कभी-कभी कई-कई देवता एक जगह जमा होकर उत्सव मनाते हैं। नर-नारी अच्छे-अच्छे कपडे पहन फूलों से सज-धजकर वहाँ पहूँचते हैं। मिठाइयों और दूसरी चीज़ों की दूकानें जाती हैं। देवताओं के यह मेले दो या तीन दिन तक चलते हैं। देवता भी नाचती है, और बाजे पर स्त्री-पुरुष भी नाचते अपनी भाषा में मधुर गीत गाते हैं।"[1]
कोठी का मेला शिमला जिले का सबसे बडा मेला है, जो मई के मध्य में होता है। सायर, पंडरू, खराई, चेरेवाल आदि शिमला जिले की अन्य महत्त्वपूर्ण मेलायें हैं। हिमालय के लोगों की खान-पान और रहन-सहन में काफी विभिन्नताएँ हैं। जाडों के सबेरे वे लोग भोजन के साथ दही या मट्ठा खाते हैं और रात को रोटी। गर्मी के दिनों में मक्की के सत्तू के खाने का रिवाज़ है। किसान लोगों के भोजन के बारे में उनकी राय है - *"किसान दिन में तीन या चार बार खाना खाते हैं। सबेरे के वक्त गगूटी, मध्याह्न में चौलाई और मंडुवा की रोटी, तथा रात को चावल या चपाती खाते हैं। सबेरे के भोजन को वहाँ जठालनू, मध्याह्न के भोजन को चेहली और शाम के भोजन को बियालू कहते हैं। गर्मियों के दिनों में दो-तीन बार लोग सत्तू खाते हैं। साँई और घरथी इलाके के लोगों का मुख्य भोजन सत्तू है। वहाँ मक्की के आटे की रोटी भी खाई जाती है। मांस, मछली सभी खाते हैं।"*[1] फुलेच

1. राहुल सांकृत्यायन; हिमाचल भाग-1 ; पृ. 82
2. राहुल सांकृत्यायन; हिमाचल भाग-1 ; पृ. 42

का मेला भी कनौर में बहुत प्रसिद्ध है, असल में यह पितरों की पूजा है। लेकिन इसमें दुख या शोक का गंध कहीं भी नहीं है। उन लोगों के लिए वह बड़ा त्योहार है। सभी मेलाओं के समान पशुबलि से इसका प्रारंभ होता है। खाने के लिए मांस की तरह पीने के लिए शराब भी होता है। यह मेला तीन दिन तक होते हैं। केवल किन्नर देश में यह मेला देखने को मिलता है। इस प्रकार राहुलजी ने हिमालय यात्राओं द्वारा वहाँ के विभिन्न प्रान्तों की वेश-भूषा, त्योहार, भोजन आदि के विवरण देते हुए वहाँ की सांस्कृतिक परिस्थिति का पूरा विवरण दिया है।

तिब्बत यात्रा से सम्बन्धित पुस्तकों में तिब्बत की सांस्कृतिक परिस्थिति का उल्लेख हुआ है। वहाँ के लोगों की वेश-भूषा, रीति-रिवाज़, त्योहार आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। तिब्बत में शत-प्रतिशत लोग मांसाहारी हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'यात्रा के पन्ने' में विस्तार से बताया है। वहाँ मांस उतना सुलभ तो नहीं है फिर भी बड़े-बड़े घरों में सूखा मांस हमेशा तैयार था। सूखे मांस के दो एक टुकडे एक ऊँचे पाव की तस्तरी पर रखकर नमक और चाकू के साथ मेहमान को खाने के लिए रख दिया जाता है। यह वहाँ के लोगों के लिए सबसे प्रिय भोजन है। भोजन में विचित्रता देखने के साथ तिब्बती लोगों के त्योहारों में भी विशिष्टता है। वहाँ का सबसे बडा उत्सव है नववर्षोत्सव, जो 30 जून को मनाया जाता था। इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है - *"30 जून को यहाँ पर भी अब तिब्बती नववर्ष मनाया जा रहा था। लहासा में तो नववर्षोत्सव सबसे बड़ा उत्सव है। यहाँ पर भी लोग नये-नये कपडों से सजधज कर ध्वजा-पताका ले घोडों पर चढ़ निकले। स्त्रयाण भी तमाशा देखने गयी थीं। दलबल सहित दोनों महलों के स्वामी पूरब के पहाड के पीछे गये, और वहाँ कितनी देर तक घोडे और आदमी चक्कर काटते रहे। लोग शाम को पाँच बजे लौटे।"*[1] यहाँ राहुलजी ने स-क्य के नववर्षोत्सव का वर्णन किया था। वहाँ

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 46

के बौद्ध विहारों का वर्णन करते हुए उन्होंने यही स्थापित किया कि उनमें अधिकांश भारतीय ही लगते हैं। अर्थात् भारतीय कला एवं कारीगरी के अनुसार ही वहाँ के मठों का निर्माण हुआ था। यह तिब्बती लोगों पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव पर प्रकाश डालता है। लद्दाख तथा तिब्बत में पाण्डव विवाह प्रथा प्रचलित थी। अर्थात् सभी भाइयों के लिए पत्नी होना। ये सभी वहाँ की सांस्कृतिक परिस्थिति की ओर इशारा करती है।

'इरान' नामक कृति में वहाँ के शहरों के वर्णन करने के साथ, इरानी भोजन, नाटकों का खेल आदि की भी विस्तृत जानकारी मिलती है। ईरानी शहरों का वर्णन इस प्रकार किया गया है - *"इरानी शहरों की सडकों खूब साफ और चौडी है; और वे इतनी सीधी निकाली गई हैं कि मालूबम होता है पहले से नक्शा तैयार करके शहर को बसाया गया है। सचमुच इरानी सडकों का मुकाबला हिन्दुस्तान में सिर्फ नई दिल्ली की सडकों ही कर सकती हैं और जब हमें मालूम होता है कि यह सब काम दस वर्ष के छोटे समय में किया गया है तो आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता।"*[1] यहाँ राहुलजी ने दस वर्ष के समय में इरानी सभ्यता पर हुई नयी मोड पर प्रकाश डाला है। इरानी सभ्यता की एक और विशिष्टता यह है कि वहाँ एक शहर से दूसरे शहर जाते समय जवाज (आज्ञापत्र, राहदारी) की आवश्यकता है। स्वदेशी हो या विदेशी सभी के लिए इसकी ज़रूरत है। इरानी भोजन के बारे में भी उन्होंने लिखा है -*"भोजन में पतली चपातियाँ, चावल बिना मसाले दुम्बे का गोश्त था। एक तश्तरी में हरा दौना या पुदीना जैसा पत्ता और कुछ टुकडे प्याज के भी थे।"*[2] राहुलजी के द्वारा देखा गया इरानी नाटकों का भी विस्तृत वर्णन इस कृति में है। उनके अनुसार वे नाटक स्त्रियों के प्रति घृणा और अविश्वास बढ़ानेवाले थे। इसलिए ही राष्ट्रीय दृष्टि से इन नाटकों का

---

1. राहुल सांकृत्यायन;एशिया के दुर्गम भूखण्डों में; पृ. 134
2. राहुल सांकृत्यायन;एशिया के दुर्गम भूखण्डों में; पृ. 140

कोई महत्त्व नहीं है। इस प्रकार इरान नामक कृति वहाँ की सांस्कृतिक परिस्थिति को उजागर करने में सक्षम है। 'जापान' में जापानियों पर पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के बारे में उल्लेख है। वहाँ की अधिकतर लड़कियाँ शिक्षित और कामकाजी है। इन लड़कियों की पोशाक अंग्रेज़ी ढंग के हैं। वहाँ के नृत्य कला में भी पाश्चात्य ढंग बहुत है। इन नृत्यों में केवल इतना फरक है कि बौद्ध-धार्मिक मुद्राओं को जोडकर बौद्ध नृत्य का नाम दे रखा है। नृत्य के वेश भी अधिकांश अंग्रेज़ी ढंग के हैं। कहीं-कहीं जापानी वेश देखने को मिलता है। 'सेवियत मध्य एशिया' में राहुलजी ने सोवियत क्रान्ति के बाद की सांस्कृतिक परिस्थिति का उल्लेख किया है। पहले स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं थी। लेकिन क्रान्ति के बाद स्त्रियाँ कारखानों में काम करती थी। उसी प्रकार वहाँ की कला में भी बहुत फरक आयी। सोवियत के पुराने कलाकारों ने कला का प्रयोग आभूषणों एवं रत्नों पर किया था। लेकिन बाद में आकर पत्थरों पर भी खोदा है। राहुलजी के शब्दों में - *"किर्गिजों के बनाये कालीनों और गलीचों में उन्होंने प्राचीन काल से आज तक की किर्गिज़ जीवन गाथा पढी है। इनमें शिकार के भी दृश्य हैं, भोज और देशान्तर-गमन के दृश्य हैं, और कितनी ही कहानियाँ भी अंकित हैं।"*[1] यहाँ राहुलजी ने किर्गिस्तान के कला का विवरण दिया है, जो वहाँ की संस्कृति के द्योतक है। इस प्रकार राहुलजी के यात्रा साहित्य सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

3.4 आर्थिक परिस्थिति

राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में जितना विभिन्न देशों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। उतना ही आर्थिक परिस्थिति को भी उजागर किया गया है। विभिन्न देशों की अर्थ व्यवस्था वहाँ की सामाजिक दशा पर आधारित है। देशी यात्रा

---

1. राहुल सांकृत्यायन; सोवियत मध्य एशिया; पृ. 58

कृतियों से यह स्पष्ट दिखाई पडता है कि उस समय भारत की आमदनी का मुख्याधार कृषि था, लेकिन विदेशों में उद्योग-धन्धों ने ही आर्थिक व्यवस्था को कायम रखा है।

'हिमाचल', 'किन्नर देश में', 'गढ़वाल', 'दार्जिलिंग परिचय', 'कुमाऊँ', 'जौनसार देहरादून' आदि भारतीय यात्रा सम्बन्धी ग्रन्थों में भारत की अर्थात् हिमालय की उस समय की आर्थिक स्थिति का उल्लेख हुआ है। कृषि की अवस्था हिमालय के हर एक प्रान्त में भिन्न-भिन्न रूप में थी। ऊँचाई के अनुसार उत्पाद्य चीज़ों में भिन्नता है, साथ ही खेती काटने के समय में भी अन्तर है। जौ, गेहूँ, चावल, मक्का आदि वहाँ बोये जानेवाली चीज़ें हैं। सेब, अनार, अंगूर, खूबानी आदि फलों के लिए भी हिमालय प्रसिद्ध है। चाय के बगीचे भी वहाँ है। हिमालय के लोगों की आजीविका के साथ पशुपालन और उससे होनेवाला व्यवसाय भी अविच्छिन्न रूप से जुडा हुआ है। इन सभी चीज़ों के निर्यात पर ही वहा की आर्थिक व्यवस्था निर्भर है। बाहरी व्यापार के साथ वहाँ भी इन चीज़ों के विक्रय होते हैं। गढवाल के भीतरी व्यापार के सम्बन्ध में राहुलजी ने लिखा है -*"तिल, मिर्च, घी, मधु, चावल, गेहूँ जैसी चीज़ें यहाँ की दूकानों में बिकती है। भागीरथी, मंदाकिनी और अलकनन्दा - यहाँ की तीनों प्रधान नदियों के किनारे से गंगोत्री, केदार, बदरी के रास्ते जाते हैं, जिनमें किसी-किसी साल 60000 तक यात्री होते हैं। इसका भला या बुरा एक परिणाम यह हुआ है कि पास के गाँववालों ने भी छोटी-छोटी दूकानें बनाकर हाथ में तराजू ले लिया है।"*[1] वास्तव में गढ़वाल का आर्थिक जीवन इस यात्रा पर निर्भर है। यात्रियों के कम हो जाने पर आमदनी भी कम हो जाएगी। 'दोर्जेलिंङ् परिचय' में यह स्पष्ट दिखाया है कि वहाँ का व्यापार एक ओर उत्तर में तिब्बत, पूरब में भूटान और पश्चिम में नेपाल के साथ है, तो दूसरी ओर बंगाल और बिहार

---

1. राहुल सांकृत्यायन; गढ़वाल; पृ. 303

से भी है। पूरे हिमालय में उद्योग धन्धे बहुत कम है। देहरादून जिले के बारे में राहुलजी ने यही बताया है कि वहाँ उद्योग धन्धों की बडी सम्भावना होने पर भी उसका अभाव-सा है। चीनी मिल, हिमालय ग्लास वर्क्स, चाय, रेशम आदि छोटे-छोटे उद्योग वहाँ देखने को मिलता है। 'किन्नर देश में' कृति में राहुलजी ने वहाँकी आर्थिक स्थिति को बढ़ाने के लिए अनेक सुझाव दिए हैं। उनके अनुसार वहाँ के यातायात को बढ़ाना है, वहाँ बिजली स्टेशन की ज़रूरत है, उसी प्रकार वहाँ के धातुओं का सदुपयोग करना है। ये सभी वहाँ की आर्थिक स्थिति को बहुत आगे बढाता है।

हिमालय के पडोसी देश तिब्बत की आर्थिक स्थिति को भी राहुलजी ने अपनी यात्रापरक कृतियों में वर्णित किया है। जनसंख्या की दृष्टि से तिब्बत का क्षेत्रफल बहुत बडा है। राहुलजी का मत है कि उनकी तिब्बत यात्राओं के समय वहाँ की जनसंख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई थी। वहाँ दिखाई पडनेवाले गाँवों का ध्वंसावशेष इसका प्रमाण है। साथ ही वहाँ प्रचलित बहुपति विवाह प्रथा भी इसका एक कारण है। इस प्रथा के कारण संपत्ति का बँटवारा कभी नहीं होता है। वहाँ प्रत्येक घर और खेत को एकनाम दिया जाता है और सदा के लिए वही नाम है। राहुलजी ने लिखा है - *"खेत का मालिक व्यक्ति नहीं, बल्कि घर होता है। सभी भाइयों का एक ही विवाह होने से घर के बाँटने की संभावना नहीं, इसीलिए नाम बदलने की भी आवश्यकता नहीं है, और जायदाद उसी घर के नाम पीढियों से दर्ज चली आती है। इसके ही कारण बल्कि हरेक घर का एक नाम होना भी आवश्यक है।"*[1] राहुलजी ने यही बताया है कि इस प्रकार की प्रथा होने के कारण कोई प्राकृतिक आपत्ति नहीं पडी है तो वहाँ की आर्थिक व्यवस्था सदा के लिए सुरक्षित है। लेकिन तिब्बत की सारी भूमि कृषि के लिए उपयोगी नहीं है। वृक्ष वनस्पतियों के अभाव के कारण खेती को नितान्त खाद देने की ज़रूरत है। पानी की कमी भी कृषि के विस्तार में बाधक है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 68.

मध्य और पूर्वी तिब्बत कृषि प्रधान प्रान्त है। अन्य स्थानों के लोग अधिकतर भारत के अन्न पर निर्भर है। जौ, गेहूँ, बकला, सरसों, मटर, फाफड आदि की फसलें तिब्बत में होती है। सेब, अंगूर, अखरोट, खूबानी आदि के बाग भी वहाँ दिखाई पडते हैं। इन सबके बावजूद ऊन तिब्बती आर्थिक व्यवस्था को कायम रखने का मुख्याधार है। ये ऊन कलिंपोङ् से कांगडा तक के रास्तों से भारत में आते हैं, और भारत में इसका क्रय-विक्रय होते हैं। तिब्बती लोगों का एक अभिशाप यह है कि चाहे खेती हो या पशुपालन, संपत्ति का स्वामित्व सामन्तों और बडे-बडे मठों के हाथ में है। इसके बारे में उन्होंने लिखा है - *"सचमुच ही वहाँ की साधारण जनता उस पुरानी सामन्तवादी चक्की के नीचे पिसती हुई अत्यन्त हीन अवस्था में थी।"*[1] वास्तव में तिब्बत के सामान्य कृषक इम मालिकों के अर्धदास है। 'यात्रा के पन्ने' में राहुलजी ने यही आशा प्रकट की है कि चीन के नवनिर्माण के प्रभाव से जल्दी ही इस आर्थिक दुरवस्था में बदलाव आएगा।

'जापान' में राहुलजी ने सन् 1934 के समय की आर्थिक परिस्थिति का विवरण दिया है। जापान की आर्थिक व्यवस्था का मुख्याधार उद्योग ही है। वहाँ के कारखानों में काम करनेवाली स्त्रियों एवं पुरुषों की मासिक वेतन के बारे में इस कृति में प्रतिपादित किया है। वहाँ के सैनिकों की आर्थिक स्थिति का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वे अवैतनिक थे। कपडा, मकान, खाना आदि उनको मिला था। इसके अलावा केवल 4 सेन् (आधा आना) प्रतिदिन मिला था। राहुलजी ने जापान के प्रधान मंत्री से लेकर साधारण मज़दूर तक के लोगों की मासिक वेतन की एक तालिका भी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की है जिससे वहाँ की आर्थिक दशा का पूरा विवरण मिलता है। जापानी गाँवों की आमदनी कृषि ही है। कृषकों की आमदनी के बारे में लिखा है - *"धान के खेत से दोनों फसलों में फ़ी एकड 360 येन् (270 रुपया) आ जाते हैं। रबी के खेत की तीन फसलों से फी एकड 980 येन्*

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 94.

(745 रुपया) सध जाते हैं। बाँस का दाम गिर गया है, किन्तु जापानी लोग बाँस की करील की भाजी बहुत पसन्द करते हैं, जिससे फ़ी ऐकड 400 येन् (300 रुपया) प्राप्त हो जाते हैं।"[1] इस प्रकार जापान की आर्थिक व्यवस्था मुख्यत: उद्योग एवं कृषि पर आधारित है।

चीनी यात्रा सम्बन्धी कृतियों में वहाँ की आर्थिक दशा का पूरा विवरण दिया गया है। जापान की भाँति चीन भी कारखानों का देश है। ये कारखानें ही वहाँ की आर्थिक व्यवस्था को नियन्त्रित रखती है। कोयला, पेट्रोल, मशीन बनाने के कारखाने वहाँ ज़्यादा है। इन कारखानों में कितने मज़दूर है, उनका मासिक वेतन कितना है ये सब बातें इस कृति से मिलता है। वहाँ की आर्थिक व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने लिखा है - *"पुरुषों के कोट-पैन्ट दस युवान (बीस रुपये) के मिल जाते थे और स्त्रियों के तीन युवान में। जूता दो युवान से चौदह युवान (4 रुपये से 28 रुपये तक)। चार कमरेवाले फ्लैट का किराया 13 युवान (26 रुपया)। इसी में बिजली और घर गरम करने का खर्च भी शामिल था।"*[2] इस विवरण से यही पता चलता है कि राहुलजी ने वहाँ के हर एक चीज़ के दाम को समझाने का प्रयास किया है। साथ ही आर्थिक दृष्टि से चीन में क्या प्रगति हुई उसकी ओर भी इशारा किया है। 'सोवियत मध्य एशिया', 'रूस में पच्चीस मास' आदि सेवियत यात्रा ग्रन्थों में भी राहुलजी ने यही दिखाया है कि उद्योग ही उन सबों की आर्थिक परिस्थिति को नियन्त्रित रखता है।

3.5 राजनीतिक परिस्थिति

राहुल सांकृत्यायन की यात्रापरक कृतियों में राजनीतिक परिस्थिति का अभाव सा है। कहीं-कहीं विभिन्न देशों की शासन व्यवस्था का उल्लेख मात्र हुआ है। *"'सेवियत मध्य एशिया' में उज़्बेकिस्तान प्रजातन्त्र के शासन की सबसे बडी संस्था प्रजातन्त्र की महा-सोवियत् या पार्लियमेन्ट है, जिसका*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; जापान; पृ. 177
2. राहुल सांकृत्यायन; चीन में क्या देखा; पृ. 43

चुनाव 18 वर्षा की उम्र से ऊपर के स्त्री-पुरुष वोटरों द्वारा होता है। सारा प्रजातन्त्र कई जिलों में बँटा है और हर जिला कई परगनों या तहसीलों (रायोन) में विभक्त है। रायोन के नीचे फिर गाँव आते हैं। गाँव के प्रबन्ध के लिए बालिग मताधिकार द्वारा ग्राम-सोवियत् चुनी जाती है। यही ग्राम-सोवियत् गाँव का सारा इन्तजाम करती है। इसी से तहसील और जिला-सोवियत् का भी निर्माण होता है।"[1] यहाँ राहुलजी ने उज़्बेक सोवियत् समाजवादी प्रजातन्त्र के शासन के बारे में बताया है। 'किन्नर देश में' नामक कृति में वहाँ की राजनीतिक जागृति का उल्लेख अनेक बार किए है। भारत सरकार द्वारा हिमाचल प्रदेश रूपायित करते समय उसकी सीमाओं में जो अस्वाभाविकता आयी है उसकी ओर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। उनकी राय में सभी रियासतों को उसमें सम्मिलित होना चाहिए। तिब्बती यात्राओं में भी कहीं-कहीं वहाँ की राजनीतिक स्थिति का उल्लेख है। वहाँ हर एक गाँव में मुखिया होते हैं। इनके ऊपर हर एक इलाके में जोङ्-पोन् होता है। यहाँ जोङ् का अर्थ किला है और पोन् का अर्थ है अफसर। इन जोङ्-पोन् के ऊपर दलाई लामा के गवर्नमेंट का अधिकार है। वास्तव में जोङ्-पोन् को वहाँ के निवासी अपने राजा समझते थे। न्याय और व्यवस्था में उनका बहुत अधिकार है। इस प्रकार तिब्बती शासन व्यवस्था पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। 'मेरी यूरोप यात्रा' के अन्त में जर्मनी की राजनीतिक स्थिति का उल्लेख करते हुए हिटलर की शासन व्यवस्था का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार राहुलजी के विरले ही यात्रा कृतियों में उस समय की राजनीतिक स्थिति का उल्लेख है।

3.6 साहित्यिक परिस्थिति

राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में विभिन्न देशों के साहित्य एवं साहित्यकार का उल्लेख है जो वहाँ की साहित्यिक परिस्थिति की ओर

---

1. राहुल सांकृत्यायन; सोवियत मध्य एशिया; पृ. 94

इशारा करती है। 'हिमाचल', 'किन्नर देश में' आदि कृतियों में हिमाचल के लोक साहित्य का विवरण है। 'किन्नर देश में' कृति में बंगाल एशिया सभा के जर्नल में प्रकाशित किन्नर गीतों का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें उन्होंने उस गीत के रचनाकाल, कवि आदि विवरण देने के साथ गीत के भावार्थ समझने के लिए एक टिप्पणी भी दी गई है। वे सब सूरजमनी, प्यासमोनी आदि लोक कवियों द्वारा लिखित कविताएँ हैं। 'गढवाल', 'कुमाऊँ' आदि कृतियों में भी राहुलजी ने हिमालय के जनसाहित्य का उल्लेख किया है। उनका मत है कि उनमें अधिकांश अलिखित है।

राहुलजी की तिब्बती यात्राओं का उद्देश्य ही तिब्बती बौद्ध ग्रन्थों को खोज निकालना था। 'यात्रा के पन्ने' में उन्होंने लिखा है - *"कन्जूर में एक सौ तीन पोथियाँ हैं, और प्रत्येक पोथी दस हज़ार श्लोकों अर्थात् तीन लाख बीस हज़ार अक्षरों के बराबर की है। सब मिलाने पर दस लाख श्लोक से कम नहीं होंगे, अर्थात् हमारे यहाँ के छह-सात महाभारत के बराबर यह ग्रन्थ-राशि है, जिसे कन्जूर (बुद्ध-वचन) कहा जाता है। ये सभी ग्रन्थ संस्कृत से तिब्बती भाषा में अनूदुत हुए हैं। इससे भी बडा दो सो पैंतीस पोथियों का दूसरा विशाल ग्रन्थ-संग्रह है, जिसमें हज़ारों भारतीय ग्रन्थों का तिब्बती अनुवाद करके सुरक्षित रखा गया है। शास्त्रों का अनुवाद होने के कारण इस विशाल संग्रह को तन्जूर (शास्त्र-अनुवाद) कहते हैं।"*[1] यहाँ राहुलजी ने संस्कृत से अनूदित तिब्बती बौद्ध ग्रन्थों के बारे में बताया है। इसके अलावा 'प्रमाणवार्तिक-भाष्य', 'भाष्य' या 'वार्तिकालंकार' आदि तिब्बती ग्रन्थों का उल्लेख भी इस कृति में है। राहुलजी ने पा - छब् - लो -च -व -भी - म - ग्रगस्की की समाधि के बारे में भी बताया है जो तिब्बत के तीन सबसे बडे विद्वान अनुवादकों में एक है। 'ईरान' में राहुलजी ने इरान के राष्ट्रीय कवि फिर्दौसी का उल्लेख किया है। उन्होंने 'शाहनामा' नाम से इरान का इतिहास लिखा।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 39

'मेरी यूरोप यात्रा' में राहुलजी ने वहाँ के महान घुमक्कड लेखक डेविस का उल्लेख किया है। उनके द्वारा लिखी पुस्तक है 'एक माहन घुमक्कड की आत्मकथा'। इस ग्रन्थ के बारे में राहुलजी ने लिखा है - *"अपने ग्रन्थ में उसने घुमक्कड़ों की परस्पर सहानुभूति और सहायता, नयी-नयी मुसीबतों के झेलने और नये स्थानों को देखना आदि बड़ी सजीव भाषा में लिखा है।"*[1] इस प्रकार राहुलजी ने विभिन्न यात्रापरक कृतियों में विभिन्न देशों के साहित्य का विवरण दिया है।

3.7 निष्कर्ष

राहुल सांकृत्यायन एक सच्चे लेखक पर्यटक थे। यात्रा में उन्हें आकर्षण था, सर्वत्र सीमाओं को लाँधते हुए आगे चलते थे। एक सामान्य पर्यटक से आगे बढ़कर एक विचारक की भाँति इन स्थानों का वर्णन किया गया है। उनका यात्रा साहित्य विवरणात्मक मात्र नहीं साहित्यिकता से भी संपन्न है। देश-विदेश के विशद वर्णन के साथ वहाँ के जीवन, रीति-रिवाज़, उत्सवों, त्योहारों का भी सजीव चित्रण मिलता है। वास्तव में इन यात्रा वर्णनों के पीछे एक कलाकार का हृदय और एक विचारक का मस्तिष्क है जो देश-विदेश में बिखरी सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति को उजागर करने में सक्षम है। समाज के चित्रण की दृष्टि से राहुलजी की इन यात्रा कृतियों का विशेष महत्त्व है। तिब्बती यात्राओं का मुख्य उद्देश्य प्राचीन हस्तलिखित पोथियों की खोज थी, फिर भी इन यात्रा वर्णनों में भोटियों के जीवन, उनके रीति-रिवाज़, धर्म आदि का विशद वर्णन किया गया है। तिब्बत की यात्राओं में तिब्बतीय समाज एवं संस्कृति मुखरित है तो 'किन्नर देश में', 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'हिमाचल' जैसी कृतियों में भारतीय समाज का चित्रण किया गया है। 'ईरान', 'मेरी यूरोप

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी यूरोप यात्रा; पृ. 77

यात्रा', 'जापान', 'रूस में पच्चीस मास' आदि में विविध विदेशी समाज एवं संस्कृति का अंकन है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि राहुलजी का यात्रा साहित्य देश-विदेश की विभिन्न परिस्थितियों को जानने का विश्वकोश है।

चौथा अध्याय
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

सारांश : *सांस्कृतिक दृष्टि से राहुलजी के यात्रा साहित्य का मूल्यांकन इस अध्याय में हुआ है। यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित लोक संस्कृति, भारतीय संस्कृति तथा विदेशी संस्कृति का विस्तृत विवेचन इसमें किया गया है।*

अध्याय चार
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भारतीय साहित्य में प्राच्य संस्कृति, भौतिक संस्कृति, आधुनिक संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति आदि शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। धर्म और संस्कृति अन्योन्याश्रित है। ग्रामीण संस्कृति मानव मूल्यों को सुरक्षित रखने का मूल बिन्दु है। पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। हर एक संस्कृति का अपना महत्त्व है। वास्तव में यात्रा साहित्य सांस्कृतिक सम्पदा का भण्डार है, खास तौर से राहुलजी का यात्रा साहित्य विभिन्न देशों की संस्कृति को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। विभिन्न देश के लोगों की वेश-भूषा, रहन-सहन, त्योहार तथा प्रथा-परम्पराओं ने उनके यात्रा साहित्य को सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न किया है। वास्तव में ये सब किसी भी देश की संस्कृति को अभिव्यक्त करनेवाले प्रमुख आयाम है। उनके समस्त यात्रा साहित्य में संस्कृति के मुख्यत: तीन पक्ष प्रमुख हैं - लोक संस्कृति, भारतीय संस्कृति एवं विदेशी संस्कृति।

4.1 लोक संस्कृति का स्वरूप

लोक (Folk) शब्द का अर्थ वही है जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित अभिजात्य संस्कार तथा पाण्डित्य एवं अहंकार से शून्य एक वर्ग है जिनकी अपनी संस्कृति होती है। राहुलजी की हिमालय सम्बन्धी यात्रा कृतियों में संस्कृति के इस पक्ष का उद्‌घाटन हुआ है। हिमालय को जहाँ एक ओर प्राकृतिक सौन्दर्य का वरदान प्राप्त है वहाँ दूसरी ओर वहाँ के निवासियों ने अपनी कुशलता से उसे स्वर्ग होने का जामा पहनाया है।

'किन्नर देश में', 'दोर्जेलिंङ् परिचय', 'कुमाऊँ', 'गढ़वाल', 'जौनसार देहरादून', 'हिमाचल' जैसी कृतियों में हिमालय के निवासियों ने अपनी संस्कृति को जिस तरह सुरक्षित रखा है उसकी ओर संकेत किया गया है। देवी-देवताओं पर अगाध विश्वास, त्योहारों में निजीपन, खान-पान तथा वेश-भूषा की विशेषता पर्वतीय संस्कृति की अपनी विशिष्टता है। राहुलजी ने हिमालय सम्बन्धी यात्रा कृतियों में इन सभी सांस्कृतिक विशिष्टताओं की ओर प्रकाश डाला है।

'किन्नर देश में' नामक कृति में किन्नर लोक गीत, लोक भाषा, लोक देवता, पार्वत्य उत्सव आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। लोक गीत वही है जो अज्ञात कवि द्वारा रचित लयात्मक अभिव्यक्ति है जिसमें लोक मानस के प्रिय विषय का उद्‌घाटन होता है। राहुलजी ने किन्नर लोक गीतों की प्रशंसा करते हुए लिखा है - *"किन्नर कंठ मधुर हैं किन्नर गीत मधुर है साथ ही वह अत्यन्त सरल और अकृत्रिम है। उसमें कोई उस्तादी कालाबाजी नहीं है.....जनसंगीत में पहाडी संगीत मुझे बहुत मधुर मालूम होता है, और उसमें भी प्रथम स्थान मैं किन्नर संगीत को देता हूँ।"*[1] यहाँ राहुलजी ने हिमालय के उन उपेक्षित किन्नर लोगों के मधुर गीतों पर प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि वहाँ की स्त्रियाँ किसी भी काम बिना गीत के नहीं कर सकतीं। घास काटते समय, खेतों में काम करते समय उनके मधुर कंठ दिगन्त को मुखरित करती रही है। राहुलजी की राय में उनकी यात्रा के समय ये किन्नर गीत सुरक्षित है, लेकिन बाद में सुरक्षित रहेंगे या नहीं उसमें सन्देह है। राहुलजी ने इस कृति में किन्नर गीतों की प्रशंसा करने के साथ अनेक गीतों को उनके भावार्थ के साथ प्रस्तुत भी किए हैं। उदाहरणार्थ एक किन्नरगीत प्रस्तुत किया जा रहा है -

"दो गोल्यो दङ् शोङ् माज़ो कोष्टिङ्पे।
देवियो चंडिके, शुम् बोर्शङ् बाहेर।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ. 328

वहाँ से वहाँ, कोठी के माझे।
देवी चंडिका, तीसरे वर्ष बाहर (आई)।
ऊपर भैरव के (आगे)।"[1]

यहाँ राहुलजी ने किन्नर के प्रसिद्ध चंडिका देवी से सम्बन्धित गीत को उद्घृत किया है। किन्नर लोक गीतों के अनेक प्रकार होते हैं - जन्म के गीत, विवाह के गीत, मृत्यु के गीत, त्योहार और देवी के गीत आदि। राहुलजी ने 'किन्नर देश में' नामक कृति में इन सभी को भावार्थ के साथ प्रस्तुत किए हैं। राहुलजी के शब्दों में - *"मानव जीवन का वास्तविक चित्रण जनगीतों में होता है, उतनी और जगह मिलनी कठिन है और यथार्थवाद तो उनकी अपनी विशेषता है। इसीलिए प्रत्येक जनगीत अपने पीछे जीवन - इतिहास रखते हैं।"*[2] यहाँ राहुलजी ने यह स्पष्ट किया है कि मानव जीवन का यथार्थ चित्रण लोक गीतों में निहित है। किन्नर लोक गीतों के साथ किन्नर लोकभाषा का भी उल्लेख है। उनके अनुसार किन्नर भाषा में तीन तत्व पाये जाते हैं - मूल (किरात) भाषा, हिन्द - यूरोपीय (संस्कृत पारिवारिक) भाषा और भोट (तिब्बतीय) भाषा। किन्नर भाषा में लोगों ने 'पृथ्वी' के लिए 'मट्ङि' शब्द, पत्थर के लिए 'रग' शब्द, खेत के लिए 'रिम' शब्द का प्रयोग किया था। इस प्रकार राहुलजी ने किन्नर शब्दों की एक तालिका भी प्रस्तुत की थी, साथ ही किन्नर भाषा के वार्तालाप को भी सोदाहरण व्यक्त किया था। 'यह रास्ता कहाँ जाता है?' के लिए किन्नर भाषा में 'जु आमे हम बियोदु' कहा था। इस प्रकार राहुलजी ने किन्नर भाषा का अच्छा विवरण दिया था। भाषा किसी भी देश की संस्कृति को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। राहुलजी ने किन्नर लोक भाषा का विस्तृत वर्णन करते हुए वहाँ की लोक संस्कृति का अच्छा चित्रण प्रस्तुत किया था।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ. 354
2. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में ; पृ. 331

किन्नर देश की देवी-देवताओं का भी अपना महत्त्व है। वहाँ की देव-परम्पराएँ देश के अन्य भागों से भिन्न हैं। वहाँ देवता से पूछे बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता। पालकी में देवता के चेहरे रखे रहते हैं। एक आदमी इस पालकी को अपने दोनों कन्धों पर रखकर उठाते हैं। पालकी इधर या उधर उछलकर देवता के अभिप्राय को प्रकट करते हैं। वहाँ के देवताओं के लिए पूजा से ज़्यादा महत्त्व बलिदान का है। महामारी आदि के समय वे लोग देवता के पास जाकर भेड या बकरे की बलि देते हैं। राहुलजी ने किन्नर के एक बलि महोत्सव का विवरण इस प्रकार दिया है - *"आँगन की चारों सीमाओं में चार स्थानों पर प्रदक्षिणाक्रमेण बलि दी जाने लगी। माता सा'ब घूम-घूमकर. झूम-झूमकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जातीं और छटपटकर पाँच पशु काट दिये जाते। दर्शकों के चेहरों पर बडी प्रसन्नता थी, किसी के मुख पर ग्लानि का चिह्न नहीं था। मैं भागना चाहता था, किन्तु लेखक-धर्म बाध्य कर रहा था कि कम-से-कम एक बलि महोत्सव को तो आद्योपान्त देख लूँ।"*[1] यहाँ राहुलजी ने यही बताया है कि इस प्रकार बलि देने पर लोग बहुत सन्तुष्ट हैं। उनके मुँह पर कोई ग्लानि नहीं है। यहाँ राहुलजी ने किन्नर लोक संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण पक्ष की ओर इशारा किया है। राहुलजी ने किन्नर लोगों की उत्सवप्रियता पर भी प्रकाश डाला है। देवताओं की प्रीति के लिए वे लोग बड़े-बड़े मेले मनाते थे। महासू की एक मेले का वर्णन इस प्रकार किया गया है - *"देवता की पालकी ऐसी होती है, जिसके ऊपर जेवरों और कीमती कपडों से राजा हुआ देवता का चेहरा या चेहरे रखे रहते हैं। पालकी के बीच से दो लम्बे-लम्बे भुर्जपत्र या किसी और दरख्त के लचकदार लंबे डंडे लगे रहते हैं, जिससे आदमी अपने दोनों कन्धों पर रखकर उठाते हैं।.... कभी-कभी कई-कई देवता एक जगह जमा होकर उत्सव मनाते हैं। नर-नारी अच्छे-अच्छे कपडे पहन फूलों से सज-*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में ; पृ. 229

धज कर वहाँ पहूँचते हैं। मिठाइयाँ और दूसरी चीज़ों की दूकानें जाती हैं। देवताओं के ये मेले दो या तीन दिन तक चलते हैं। देवता भी नाचता है, और बाजे पर स्त्री-पुरुष भी नाचते अपनी भाषा में मधुर गीत गाते हैं।"[1] यहाँ देवी की मेला का वर्णन किया गया है तो विवाह के समय, फसल काटते समय अनेक लोक-त्योहारों का वर्णन उनके हिमालय सम्बन्धी ग्रन्थों में है। किन्नर देश की यात्रा करते समय चिनी के प्रसंग में राहुलजी ने वहाँ के समाज में प्रचलित पाण्डव विवाह प्रथा का सुन्दर वर्णन किया है। 'जौनसार देहरादून' में भी यह देखने को मिलता है। ये सभी हिमालय की लोक संस्कृति को समझाने के लिए सहायक है। जिससे उनके प्राचीन इतिहास को भी समझाता है। राहुलजी की हिमालयी यात्रा कृतियों में त्योहार-उत्सवों पर व्यवस्थित जो विवेचन हुआ है जिससे उस क्षेत्र के निवासियों का पूरा विवरण मिला है।

4.2 भारतीय संस्कृति का स्वरूप

राहुलजी के यात्रा-साहित्य में अभिव्यक्त संस्कृति का दूसरा पहलू भारतीय था। भारत के विभिन्न प्रान्तों की यात्रा का चित्रण करते समय वहाँ की संस्कृति को उजागर करने का प्रयास उनके द्वारा हुआ है। भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के पाँच अवयव हैं - कर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण और रीतिरिवाज़। राहुलजी के यात्रा साहित्य में भारत के विविध प्रदेशों के समाज का विस्तृत परिचय मिलता है। इन सभी प्रदेशों की संस्कृति वहाँ के जाति एवं वर्ग, खान-पान, वेश-भूषा, आवास आदि से जाना जाता है।

4.2.1 जाति एवं वर्ग

भारतीय समाज विभिन्न जातियों एवं वर्गों में विभक्त है। राहुलजी के भारतीय यात्रा कृतियों में विभिन्न जातियों का उल्लेख है। 'मेरी लद्दाख यात्रा' में पेशावर से गुज़रते समय राहुलजी ने पठान जाति के गुण दोषों का

---

1. राहुल सांकृत्यायन; हिमाचल-1; पृ. 82

विवेचन किया है - *"ये पठान हर वक्त एक दूसरे से लडते रहते हैं। जब इन्हें आपस में लडने का काम नहीं रहता तब इधर-उधर जाकर लूटमार करते हैं, इक्के-दुक्के आदमियों को पकड कर ले जाते हैं, उनके हाथों पर चारपाई का पैर रखकर सोते हैं, नखों में फाँस ठोंक देते हैं, सर्दी के दिनों में रातों ठंडे पानी में रखते हैं; इसी तरह के और भी नाना भाँति के दुख देते हैं। सम्बन्धियों के नाम पूछते हैं। फिर उनके पास लिख भेजते हैं - 'इतने रुपये हमारे पास भेज दो तो हम तुम्हारे आदमी को छोड देंगे।' सीमाप्रान्तीय अँग्रेज़ी, गैर-अँग्रेज़ी दोनों ही पठान सामान्यत: यही लूट-मार का जीवन व्यतीत करते हैं।"*[1] यहाँ राहुलजी ने पठान जाति के निष्ठूर व्यवहार के बारे में बताया है। इसी कृति में ही उन्होंने कश्मीरी ब्राह्मणों के बारे में भी बताया है। कश्मीरी ब्राह्मण शिक्षा के क्षेत्र में बहुत आगे हैं। इसलिए ही वे लोग व्यापार तथा अन्य श्रमवाले व्यवसाय करना नहीं चाहते। वे लोग ऊँचे पदवाले नौकरियाँ करना चाहते हैं। इसी कारण से उनमें बेकारी भी ज़्यादा है। 'जौनसार देहरादून' में राहुलजी ने वहाँ की जातियों के बारे में बताया है। वहाँ बिस्ट और शिल्पकार दो भागों में सारी जातियाँ बँटी हुई है। बिस्टों में ब्राह्मण औरराजपूत सम्मिलित है। 'गढ़वाल' में भी इन दोनों जातियों की प्रधानता के बारे में बताया है। 'किन्नर देश में' नामक कृति में हिमालय की सबसे पुरानी जाति खास का उल्लेख है। इस प्रकार राहुलजी की यात्रापरक कृतियों में विभिन्न प्रान्तों की जाति एवं वर्ग को चित्रित किया गया है। वास्तव में यह भारतीय संस्कृति के एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

4.2.2. खान-पान

खान-पान या आहार पद्धति भी फारतीय संस्कृति के प्रमुख अंग है। यह पद्धति देश, काल क्रमानुसार परिवर्तित और परिवर्धित होती रहती है। राहुलजी के यात्रा कृतियों में भारत के विभिन्न प्रान्तों की आहार पद्धति का उल्लेख है। 'मेरी लद्दाख यात्रा' में राहुलजी ने पूँछ राज्य की खाद्य पदार्थों

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 31

का उल्लेख किया है - *"पैदावार अधिकतर चावलों की है, लोगों का प्रधान खाद्य भी चावल ही है। गेहूँ, मक्की आदि अन्न भी होते हैं। जिस तरह कश्मीर में केसर पैदा होती है,उसी तरह पूँछ गुच्छियों के लिए मशहूर है। यह कुकुरमुत्ते (छत्ते) की जाति का पदार्थ है। सुखाकर इसे दूर-दूर तक भेजा जाता है।"*[1] यहाँ राहुलजी ने पूँछ राज्य के लोगों की आहार पद्धति का उल्लेख किया है। गढ़वाल के खान-पान पर प्रकाश डालते हुए राहुलजी ने कहा है कि वहाँ अछूत जाति को छोडकर अन्य लोग रोटी, पूरी आदि खाते हैं। किन्नर क्षेत्र के गरीबों का मुख्य भोजन खूबानी है। ये लोग कच्ची और खट्टी खूबानी की चटनी बनाकर खाते हैं और पकने पर उससे पेट भरने की कोशिश करते हैं। राहुलजी के शब्दों में *"मरस (लालसाग) के बडे-बडे पत्ते को देखकर मुँह से लार टपकती है, लेकिन ये लोग पत्तों के लिए उसे नहीं बोते, बोते हैं उसके दाने के लिए, जिसे रोटी और भात की शक्ल में खाते हैं। हरे मरसे की खेती भी इसीलिए करते हैं। इसका नाम उन्होंने बदलकर तुलसी रख दिया है। 'तुलसी महरानी, बिन्दा महरानी' गरीबों का आधार हैं। ऐसे कई नाम उलट-पलट गए हैं, कई खाद्य वस्तुएँ अखाद्य और अखाद्य खाद्य हो गई हैं।"*[2] यहाँ रहुलजी ने किन्नर लोगों की आहार पद्धति की विशिष्टता को उजागर किया है, जो वहाँ की संस्कृति के द्योतक है। 'हिमाचल' नामक कृति में सिरमौर के लोगों के खान-पान की विभिन्नता पर भी प्रकाश डाला है। वे लोग जाडों के दिन सबेरे भोजन के साथ दही या मट्ठा खाते हैं और रात को रोटी। उसी प्रकार गर्मी के दिनों में रास्ते में मक्की के सत्तू के खाने का रिवाज़ भी है। इस प्रकार राहुलजी की भारतीय यात्रा कृतियों से भारत के विभिन्न प्रान्तों की आहार पद्धति का वर्णन मिलता है, जो भारतीय संस्कृति की विशिष्टता को उजागर करता है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 38
2. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ. 61

4.2.3 वेश-भूषा

वेश-भूषा की विविधता एवं विचित्रता इस देश की सांस्कृतिक व्यापकता को व्यक्त करती है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों की भिन्न-भिन्न पोशाकें और साज-सज्जाएँ हैं। 'मेरी लद्दाख यात्रा' में पंजाब, मुलतान आदि प्रान्तों के लोगों की पोशाक के बारे में राहुलजी ने लिखा है। सिन्धी और पंजाबी सामज में घाघरी और सलवार का प्रचलन है। लेकिन इससे भिन्न होकर पूँछ राज्य में पुरुषों की पोशाक पायजामा, कमीज़, कोट, साफा आदि है। स्त्रियाँ चुडीदार, पायजामा, कमीज़ और ओढ़नी पहना करती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों में यही समानता है कि दोनों समान भाव से जूता पहनते हैं। राहुलजी ने कश्मीरी लोगों की वेश-भूषा के सम्बन्ध में लिखा है - *"कश्मीरी हिन्दू-मुसलमान दोनों की पोशाक एक लम्बा चोग़ा है, जो कुर्त्ते की तरह का होता है। बाहें कुछ चौडी और ज़रूरत से अधिक लम्बी होती हैं। सर्दी से बचने के लिए हाथों को इसके भीतर किया जा सकता हैं; स्त्रियों और पुरुषों के चोगे में कोई भेद नहीं। पुरुष सिर पर कुलाह के साथ पगडी (साफा) बाँधते हैं। स्त्रियाँ भेड के बालों के साथ मिला कर केशों की अलग-अलग रस्सियाँ बटकर पीठ पर छोड देती हैं। सिर पर साधारणतया एक छोटी-सी चादर रखती हैं, जो पीठ पर लटकती रहती है। कोई कोई चादर के नीचे टोपी भी रखती हैं। पंडिताइनों की चादर के नीचे सिर से पैरों के पास तक कपडे की पतली चिट-सी लटकती है, तथा वे लाल या किसी और रंग के कमरबन्द से कमर भी बाँधे रहती हैं पैरों में जूता या चप्पल होती है।"*[1] यहाँ राहुलजी ने कश्मीरी हिन्दू-मुसलमान दोनों के पोशाक की समानता पर प्रकाश डाला है। वे लोग वहाँ की सर्दी से बचने के लिए ही इस प्रकार की पोशाकें पहनते हैं। 'गढ़वाल' नामक कृति में भी वहाँ के लोगों की वेश-भूषा का विस्तृत विवरण है। वहाँ के लोग ऋतु और ऊँचाई के अनुसार घटते-बढते तापमान

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 40

के अनुकूल वेष पहनते हैं। दक्षिणी भाग गरम होने के कारण सूती कपडे पहनते हैं। मध्य तापमानवाले भूभाग में कोट-पायजामा का उपयोग होता है। ठंडे भागों में वर्षा और जाडे से रक्षा के लिए भेड के बालों का बना कोट पहनते हैं, जिसे दौखी कहते हैं। इस प्रकार गढवाल के लोग भी ऊँचाई के अनुसार मौसम के अनुकूल पोशाक पहनते हैं। कुमाऊँ के लोगों की वेश-भूषा के सम्बन्ध में राहुलजी ने लिखा है - *"पुरुष पायजामा, ऊन का सफेद अँगरखा और पगडी पहनते हैं और अँगरखा के ऊपर एक लम्बी-सी पट्टी कमरबन्द के रूप में बाँध लेते हैं। यह उनका जातीय पहनावा है। परन्तु वे प्राय: पायजामा वेस्टकोट, कोट, टोपी पहिनते हैं। स्त्रियाँ घर में अपने हाथ से बुने हुए लकीरदार और बूटेदार ऊनी कपडे की लुंगी, कुरता और चोगा पहिनती हैं, चोगे के ऊपर कमरबन्द बाँधती हैं।"*[1] यहाँ राहुलजी ने कुमाऊँ के लोगों की जातीय पोशाक के बारे में बताया है। सिरमौर के लोगों की पोशाक में भी फरक है। पुरुष बिना बटन का एक सफेद वेट (लोइया, काले रंग का ऊनी कटा हुआ पायजामा और एक ऊनी टोपी पहनते हैं। लहँगा, कुरती या अंगा और सिर पर सफेद कपडे की रुमाल, यही है स्त्रियों की पोशाक। उत्सव या विशेष अवसरों पर वे लोग रंगीन कपडे पहनते हैं। वहाँ के विवाहित स्त्री नाक में सोने की नथ और सिर बाँधने के लिए चौके का उपयोग करती है। इस प्रकार सिरमौर के लोगों की पोशाक में भी भिन्नता है, जो राहुलजी ने 'हिमाचल' में व्यक्त किया है। 'यात्रा के पन्ने' में राहुलजी ने उदयपुर लोगों की पोशाक के बारे में बताया है - *"उदयपुरी पोशाक की विशेषता ज़रूर दिखलाई पडी। नीचे पैरों तक लटकता जामा और उसके ऊपर कोट, खास तरह की मेवाडी पगडी, जिसे अकबर ने अपना कर शायद मुगलों में प्रचार किया। हो सकता है, उस समय यह दिल्ली तक के लोगों की पगडी रही हो। खेर, जामा और कोट का सम्मिश्रण अच्छा*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; कुमाऊँ; पृ. 136

रहा।"[1] यहाँ राहुलजी ने उदयपुरी पोशाक की विशेषता पर प्रकाश डाला है। इस प्रकार राहुलजी की यात्रापरक कृतियों में भारत के विभिन्न प्रान्तों की वेश-भूषा का विस्तृत विवरण है। हर एक प्रान्त के लोगों की पोशाक में बिल्कुल भिन्नता पाई जाती है। यह हमारे देश की सांस्कृतिक विशालता को व्यक्त करती है।

4.2.4 नारी-समाज

भारतीय समाज में नारी के विविध रूप और स्थितियाँ हैं। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को ऊँचा स्थान दिया गया है। फिर बी उनमें अधिकांश आज भी अशिक्षित और पीडित हैं। राहुलजी की नारी सम्बन्धी यही दृष्टिकोण है कि हर क्षेत्र में स्त्री का पहूँचना आवश्यक है। साथ ही यह भी प्रकट किया गया है कि मनुष्य के प्रगति मार्ग में वह बाधा बनीं तो उसे तोडना ही उचित है। राहुलजी ने अपनी भारतीय यात्रापरक कृतियों द्वारा उस समय के स्त्रियों की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है। उस समय के अधिकांश नारी-समाज प्राचीन संस्कारों, मान्यताओं, रूढि और प्रथाओं तथा अन्धविश्वासों के घेरे में आबद्ध है। 'किन्नर देश में', 'जौनसार देहरादून' आदि कृतियों में राहुलजी ने बहुपति विवाह प्रथा का उल्लेख किया था। अर्थात् सभी भाइयों की सम्मिलित पत्नी होती है। घर और खेती के काम बढने के अनुसार एक से अधिक पत्नियाँ भी होती है। वहाँ सारा काम स्त्रियों के कन्धों पर है। किन्नर में पुरुष स्त्रियों के बराबर काम नहीं करता। भोटान्त की स्त्रियों के बारे में राहुलजी ने लिखा है -*"भोटिया (भोटान्तिक) लोगों में विशेषकर दारमा, ब्यांस और चौंदस के लोगों में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गर्मियों में सभी सक्षम पुरुष व्यापार के लिए तिब्बत चले जाते हैं, और जाडों में नीचे बाज़ार में। इसलिए इस समय सारे के सारे काम का भार स्त्रियों के ऊपर होता है। इस समय घरबार के सभी कारबार का वही प्रबन्ध*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने ; पृ. 218

करती हैं, कठिन समस्याओं का हल निकालती हैं, और अपने ही भरोसे महत्त्वपूर्ण कार्यों के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय करती हैं। यह जिम्मेवारी की शिक्षा उन्हें स्वावलम्बी तथा योग्य गृहस्वामिनी बना देती है।"[1] यहाँ राहुलजी ने भोटान्त की स्त्रियों के बारे में बताया है। वे किस प्रकार घर सँभालती है उसकी ओर प्रकाश डाला है। उस प्रान्त में खेती बहुत कम होने के कारण अन्य पहाडी प्रान्तों की तरह मर - मरकर काम करने की आवश्यकता नहीं पडती। राहुलजी ने यह भी व्यक्त किया है कि अन्य प्रान्तों की तुलना में वहाँ की स्त्रियाँ स्वतन्त्र है। उन्हें पुरुषों का बचा हुआ भोजन खाना नहीं पडता। वहाँ का सारा परिवार - स्त्री-पुरुष-बच्चे एक साथ भोजन करते हैं। राहुलजी के शब्दों में *"यहाँ की स्त्रियाँ शरीर से अधिक हट्टी-कट्टी तथा अपनी दक्षिणि पडोसिनों से अधिक स्वतन्त्रता रखती है। वहाँ स्त्री-पुरुषों के खुले मिलने, साथ नाचने-गाने - पीने में वैसी बाधाएँ नहीं हैं। पर्दा तो वह जानती ही नहीं।"*[2] यहाँ राहुलजी ने भोटान्त की स्त्रियों की स्वतन्त्रता की ओर संकेत किया है। लेकिन अल्मोडा के अन्य प्रान्तों की स्त्रियाँ बहुत दीन दशा में है। राहुलजी ने यह भी व्यक्त किया है कि पहाडी स्त्रियों का जीवन इतना कठिन होने के कारण वहाँ की आत्महत्या में पचहत्तर प्रतिशत स्त्रियाँ हैं। इस प्रकार राहुलजी ने पहाडी नारियों की विविध स्थितियों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है।

4.2.5 कलाएँ

राहुलजी की यात्रापरक कृतियों में भारत के अनेक प्राचीन भवनों, मन्दिरों, स्तूपों तथा राज-प्रासादों का वर्णन है। यहाँ उनकी दृष्टि भारतीय वास्तुकला की उत्कृष्टता एवं भव्यता की ओर गई है। वास्तव में वास्तुकला, चित्रकला, नाट्यकला आदि भारतीय संस्कृति के मूलाधार है। राहुलजी ने मैत्रेयनाथ के मन्दिर का वर्णन करते हुए लिखा है - *"गुंबा में मुझे मैत्रेयनाथ*

1. राहुल सांकृत्यायन; कुमाऊँ; पृ. 147
2. राहुल सांकृत्यायन; कुमाऊँ; पृ. 147

के मन्दिर में ठहराया गया। मंदिर काफी लम्बा-चौडा है और उसे चित्रित करने और सजाने में काफी कलात्मक सुरुचि का परिचय दिया गया है। मूर्तियाँ, अलमारियाँ सुन्दर हैं, भित्तिचित्र बनवाने में कला और परम्परा का बहुत ध्यान रक्खा गया है। इसके लिए वे स्वयं सारनाथ (बनारस) गए। वहाँ मूलगंधकुटी में बडे परिश्रम से बनाये जापानी चित्रकारों के भित्तिचित्र को देखा, उनकी तस्वीरें प्राप्त की। फिर लौटकर लद्दाख के एक कुशल चित्रकार से उन्हें चित्रित रकाया। तिब्बती कला अब बहुत रूढ़िग्रस्त हो गई है, किन्तु इस चित्रकार ने काफी सफलतापूर्वक सारनाथ के चित्रों को अंकित किया है।"[1] यहाँ राहुलजी ने मंदिर का वर्णन करने के साथ उसे बनवानेवाले चित्रकार की कुशलता की प्रशंसा भी की है। 'घुमक्कड शास्त्र' में उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि यायावर के लिए ललित एवं उपयोगी कलाओं की रुचि होनी चाहिए। राहुलजी का यह ज्ञान उनकी यात्रापर कृतियों में दृष्टव्य है। उन्होंने अपनी कृतियों में दक्षिण तथा उत्तर भारत की संगीत कला का परिचय भी उडिया संगीत के संदर्भ में प्रस्तुत किया है।

4.3 विदेशी संस्कृति का स्वरूप

राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में अभिव्यक्त तीसरा पहलू वैदेशिक है। तिब्बत, चीन, जापान, इरान, रूस एवं पश्चिमी देशों की वेश-भूषा, खान-पान तथा आवासीय व्यवस्था भारत से बिल्कुल भिन्न है। इन सभी देशों ने अपनी-अपनी संस्कृति को कायम रखा है। विदेश यात्राओं से सम्बद्ध कृतियों में विभिन्न देशों की संस्कृति को चित्रित करने का प्रयास राहुलजी के द्वारा हुआ है।

4.3.1 जाति एवं वर्ग

राहुलजी के यात्रा साहित्य मनें विविध देशों की विविध जातियों का परिचय उपलब्ध है। 'मेरी यूरोप यात्रा' में राहुलजी ने यहूदी जाति के

---

1. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ. 108

सम्बन्ध में लिखा है -*"यूरोप के लोग देखते ही यहूदी को पहचान लेते हैं। यह पहचान है अपेक्षाकृत अधिक ऊँची, लम्बी तथा तोते के ठोर-सी मुडी नाक। यूरोप में यहूदी दो देशों से होकर गए हैं - एकरूस से, दूसरे स्पेन से। पहलेवालों के बाल अधिक भूरे होते हैं और दूसरों के काले। यह लोग सूअर के मांस से वैसे ही परहेज करते हैं, जैसे मुसलमान।"*[1] यहाँ राहुलजी ने यहूदी जाति की विशेषता के बारे में बताया है साथ ही मुसलमानों से उसकी तुलना भी की है। इस प्रकार राहुलजी की विभिन्न यात्रापरक कृतियों में भिन्न-भिन्न देश की विविध जातियों का उल्लेख है। वे सब वहाँ की संस्कृति की ओर इशारा करती है।

4.3.2 खान-पान

आहार पद्धति भारतीय संस्कृति की तरह विदेशी संस्कृति का भी अभिन्न अंग है। राहुलजी ने विभिन्न देशों के भोजन का विवरण यात्रापरक कृतियों द्वारा दिया है। तिब्बती भोजन के बारे में उन्होंने लिखा है - *"तिब्बत में शत-प्रतिशत लोग मांसाहारी हैं, ... बडे घरों में सूखा मांस हमेशा तैयार रहता है..... सूखा होने पर उसे पकाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। उसके दो-एक बडे टुकडे एक ऊँचे पाँव की सस्तरी पर रखकर नमक और चाकू के साथ मेहमान के सामने रख दिये जाते हैं।"*[2] यहाँ राहुलजी ने तिब्बती लोगों की मांसाहारप्रियता पर प्रकाश डाला है। लेकिन तिब्बती लोग मछली, चिडिया जैसे छोटे-छोटे जीवियों को अभक्ष्य समझते हैं। उनका कहना है कि एक प्राणी की हिंसा से सौ आदि्मयों का भोजन हो या पाँच प्राणियों को मरकर भी एक आदमी का पेट न भरे वह अच्छा? तिब्बती लोग 'थुक्पा' नामक पदार्थ का सेवन भी करते हैं। सत्तू, मूली या आलू, माँस और हड्डी, चरबी, नमक, प्याज जैसी चीज़ें अधिक

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी यूरोप यात्रा; पृ. 18
2. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 28

पानी में डालकर घंडों पकाई जाती हैं, फिर कटोरों में लेकर गरमागरम पिये जाते हैं, यही है 'थुक्पा'। इस प्रकार 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'यात्रा के पन्ने' जैसी कृतियों द्वारा तिब्बती लोगों की आहार पद्धति की विशिष्टता को उजागर करने में राहुलजी सफल है। 'मेरी यूरोप यात्रा' में राहुलजी ने पेरिस के लोगों के सबसे प्रिय भोजन सैंडविच के बारे में बताया है। चीनी लोगों की आहार पद्धति पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है - *"चाय की पत्ती डालकर उबलता पानी छोड देने पर थोडी देर ढक्कन ढके रहने पर अर्क उतर आता है। यही चाय सारे चीन में पी जाती है और इसका कोई समय निश्चित नहीं है। रेल में तो एक-एक आदमी बीस-बीस ग्लास तक पी डालता है।"*[1] यहाँ राहुलजी ने चीनी चाय का उल्लेख किया है। वास्तव में चीन से ही चाय सारी दुनिया में गयी। जापान में पश्चिमी देशों की भाँति भोजनादि के समय पानी के स्थान पर शराब का प्रयोग अधिक होता है। चीन में भी 'मोताई' (चीनी मदिरा) का विशेष महत्त्व है। जापान में भात खाते समय दो लडकियों का प्रयोग है। रूसी भोजन के बारे में राहुलजी ने लिखा है - *"खाने की चीज़ों में लप्सा भी था, जिसका नाम हमारी लप्सी से मिलता जुलता है, किन्तु थी वह नमकीन सैवैयाँ। मछली, और साथ में मीठी चाय का एक ग्लास बस यही प्रातराश था। रूसी लोग मीठी चाय, सो भी प्याले में नहीं शीशे के गिलास में पीते हैं। उसमें दूध डालना बेकार समझते हैं; हाँ यदि मिल सके तो कागज़ी नीबू का रुपये बराबर का टुकडा डालना बहुत पसन्द करते हैं। मध्याह्न भोजन एक बजे के करीब हुआ। इसमें लोबिया और किसी साग का सूप (स्सा) पहले आया। इसके बाद टिन का मांस, उबली हुई बडी लोबिया के साथ और अन्त में कम्पोत परोसा गया, जिसमें पतले मीठे शरबत में पडी हुई खूबानी थी। चीज़ें बहुत स्वादिष्ट नहीं थीं, किन्तु पुष्टिकारक अवश्य थीं। शाम के भोजन में रेज़ का (मूली के पतले टुकडे), चावल भरी कचौडी, (पेर्गस्रीसम) और मीठी चाय का*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; चीन में क्या देखा; पृ. 40

गिलास था। यह शाम का भोजन नहीं बल्कि शाम की चाय थी।"[1] यहाँ राहुलजी ने रूसी लोगों की नाश्ता, मद्याह्न भोजन तथा शाम के भोजन का विस्तृत विवरण दिया है। इस प्रकार राहुलजी की विभिन्न यात्रापरक कृतियों में भिन्न-भिन्न देशों की आहार पद्धति का उल्लेख है, जो वहाँ की संस्कृति को समझने के लिए सहायक है।

4.3.3 वेश-भूषा

हर एक देश की वेश-भूषा में भिन्नता पाई जाती है, जो वहाँ की संस्कृति के अनुरूप बदलती रहती है। राहुलजी की यात्रापरक कृतियों में तिब्बत, चीन, यूरोप आदि विभिन्न देशों की पोशाक का विवरण है। तिब्बत के दार - चा गाँव की स्त्रियों ने सर्पाकार लद्दाखी शिरोभूषण पि-रक् को पहना था। उसी प्रकार नाक में सोने की दुअन्नी - भर की लॉग भी थी। इस प्रकार तिब्बती लोगों की आभूषणप्रियता के बारे में उन्होंने बताया है। राहुलजी के शब्दों में *"मुसलमानों को छोडकर वहाँ पर्दा बिल्कुल नहीं है, सिंहली स्त्रियाँ तो इस प्रकार कुर्ती पहनती हैं कि, आधा कन्धा ऊपर के खुला रहता है। शिर नङ्गा पहना तो उनके लिए धर्म-सा है।"*[2] यहाँ राहुलजी ने लंका की सिंहली स्त्रियों की वेश-भूषा के बारे में बताया है। जापान के कामकाजी स्त्रियाँ अंग्रेज़ी ढंग के कपडे पहनती थी। वे अंग्रेज़ी ढंग पर बाल कटाये, लम्बे चोगे तथा हाफ् पान्ट पहने हुए थे। पुरानी स्त्रियाँ इस प्रकार बाल नहीं कटाये हैं। ऊपर से पैर तक लम्बा बिना कमरबन्द का अंगरखा इनकी जातीय पोशाक है। इस प्रकार हर एक देश की वेश-भूषा वहाँ के संस्कार का मुख्याधार है। राहुलजी ने विभिन्न देशों की पोशाक के माध्यम से वहाँ की संस्कृति को उजागर करने का प्रयास किया है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; रूस में पच्चीस मास; पृ. 123
2. राहुल सांकृत्यायन; लंका; पृ. 65

4.3.4 आवास

हर एक देश की आवासीय व्यवस्था में भी भिन्नता होती है। देश की संस्कृति के अनुरूप आवासीय अभिरुचियों में भी अन्तर है। राहुलजी ने तिब्बती लोगों की आवासीय व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - *"चाहे देखने में कितने ही मलीन और असंस्कृत से मालूम होते हों, लेकिन जान पडता है, तिब्बती लोगों के खून में कला मिली हुई है। इसलिए वह बडी सुरुचिपूर्वक मकानों को सजाते हैं। दीवारों पर रंग और बेल-बूटे का काम, अल्मारियों के ऊपर भी कारु-कार्य और रंग, बर्तन चाहे मिट्टी के हों या धातु के, उनमें भी सौन्दर्य, बैठने-लेटने के आसन और सामने रखी जानेवाली छोटी चाय की चौकियाँ भी नयनाभिराम। ऐसे घरों को देखकर कौन कह सकता है कि तिब्बत के लोग पिछडे हुए हैं।"*[1] यहाँ मकानों को सजाने में तिब्बती लोगों की कलाप्रियता की ओर संकेत किया है। 'चीन में क्या देखा' नामक कृति में राहुलजी ने चीन में लकडियों के अधिक उपयोग के बारे में बताया है। वहाँ मन्दिरों के निर्माण में लकडियों का अधिक इस्तेमाल किया करते थे। केवल राहुलजी ने ही नहीं अन्य यात्रा साहित्यकारों ने भी चीनी मकानों के बारे में बताया है। गदाधर सिंह ने 'चीन में तेरह मास' नामक कृति में लिखा है - *"चीन में मकानों की छतें प्राय: छोलदारी की भाँति ढलवाँ होती हैं। भीतर मकानों की दीवारें सुन्दर-सुन्दर कागज़ों, चित्रकारियों और मनोहर सुनहरे अक्षरों में लिखे हुए शास्त्रीय वचनों की तखतियों से सजी होती हैं।"*[2] गदाधर सिंह के इस कथन से यह स्पष्ट है कि चीनी मकानों की कला सभी यायावरों के लिए प्रिय है। राहुलजी ने 'लंका' में अनुराधपुर और पोलन्नारुव दोनों स्थानों के इमारतों की भिन्नता पर प्रकाश डाला है। अनुराधपुर में इमारतों के बनवाने में पत्थर का उपयोग

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 46
2. गदाधर सिंह; चीन में तेरह मास; पृ. 175

अधिक होता है तो पोलन्नारुव में ईटों का अधिक इस्तेमाल होता है। ईंटों का बना हुआ होने पर भी वे सुरक्षित है। इस प्रकार राहुलजी की विभिन्न यात्रापरक कृतियों में भिन्न-भिन्न देश की आवासीय व्यवस्था का उल्लेख है।

4.3.5 नारी समाज

राहुलजी की यात्रा कृतियों में तिब्बत, चीन जैसे विभिन्न देशों की नारियों का चित्रण है। उन्होंने 'यात्रा के पन्ने' में यही व्यक्त किया है कि तिब्बत में भिक्षुणियों की संख्या ज़्यादा है। सभी भाइयों की एक पत्नी होने के कारण अनेक लडकियों का अविवाहित रहना स्वाभाविक है। ये लडकियाँ भिक्षुणी बन जाती है। रूस के नारी समाज की स्थिति को स्पष्ट करते हुए राहुलजी ने लिखा है - *"यूनिवर्सिटी अभी बन्द नहीं हुई थीं। वहाँ तो इस समय बीस सैकडा भी लडके नहीं थे। ट्राम चलानेवाली स्त्रियाँ थीं। टिकट बांटनेवाली स्त्रियाँ थीं। दूकान और दफ्तर का काम स्त्रियाँ कर रही थीं। यहाँ तक कि चौरस्तों पर रास्ता दिखानेवाली पुलिस में भी मुश्किल से ही कहीं पुरुष दिखायी पडता।"*[1] यहाँ राहुलजी ने रूसी स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर प्रकाश डाला है। 'सोवियत भूमि' में राहुलजी ने यह भी व्यक्त किया है कि वहाँ पति की कमाई पर गुज़ारा करनेवाली स्त्रियाँ बहुत कम है। तीनों सेनाओं से लेकर राजनीति में भी स्त्रियों का अधिकार है। पार्लियमेंट के मेंबरों में भी उनकी खासी संख्या है। राहुलजी ने यह भी व्यक्त किया है कि भोली आकृति के कारण जापानी स्त्रियों में वय: क्रम का उतार चढाव स्पष्ट नहीं होता। डॉ नगेन्द्र की 'अप्रवासी की यात्राएँ' कृति में जापानी नारियों का उल्लेख है। वहाँ हल्के काम प्राय: लडकियाँ या युवतियाँ ही करती हैं। केवल राहुलजी की यात्रापरक कृतियों में ही नहीं अन्य कृतियों में भी भिन्न-भिन्न देश की स्त्रियों का चित्रण है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह चित्रण यात्रा साहित्य के मूल्य को उठाता है।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; रूस में पच्चीस मास; पृ. 57

4.3.6 कलाएँ

तिब्बत, चीन, जापान जैसे देशों की विभिन्न कलाओं का उल्लेख भी राहुलजी ने किया है। तिब्बत के मन्दिरों में सबसे बडे मन्दिर का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है - *"मुख्य देवालय के खंभे चालीस-पचास हाथ ऊँचे और इतने मोटे हैं कि दो आदमी अपनी बाँहों से घेर सकते हैं।... मुख्य दरवाजे के बायीं ओर पचास-साठ हाथ से भी अधिक ऊँची सीधी सीढी थी, जिसपर से उतरने में दरअसल डर मालूम होता था। मन्दिर नदीपार मैदान-सी जगह में है, और शकल मुगलकालीन किलों से ज्यादा मिलती-जुलती है।"*[1] यहाँ राहुलजी ने तिब्बती लोगों की कलाप्रियता पर प्रकाश डालते हुए वहाँ के मन्दिरों का वर्णन किया है। चीन की दन्तकला का उल्लेख भी उन्होंने किया। भारत के समान चीन में भी दन्तकला का बहुत विकास हुआ था। एक हाथी दाँत पर दस हज़ार से अधिक मूर्तियोंवाले एक नागरिक दृश्य का अंकन हुआ था। इसे देखने का सुअवसर भी राहुलजी को मिला। उसी प्रकार 'कामाकुरा' की लोक प्रसिद्ध बुद्ध प्रतिमा के वर्णन में राहुलजी ने जापानी मूर्तिकला का अच्छा परिचय दिया है। 'सोवियत मध्य एशिया' में राहुलजी ने किर्गिज कला के बारे में भी बताया है। आभूषणों और रत्नों पर उनकी कला अद्वितीय है, साथ ही पत्थरों परभी खोदा है। किर्गिजों द्वारा बनाये गये कालीनों और गलीचों में किर्गिज जीवन गाथा को अंकित किया है जिनमें अनेक कहानियाँ है, शिकार के दृश्य हैं। ये सभी किर्गिज कला की उत्कृष्टता को दर्शाती है। मूर्तिकला, चित्रकला आदि किसी भी देश की संस्कृति के मुख्य अंग है। राहुलजी ने अपनी यात्रापरक कृतियों में विभिन्न देशों की कलाओं के द्वारा वहाँ की संस्कृति को अंकित करने का प्रयास किया है।

धर्म, प्रथा-परम्पराएँ तथा उत्सव-त्योहार हर एक देश की संस्कृति को दर्शाती है। राहुलजी ने तिब्बत की धार्मिक व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश

---

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 38

डाला है। वह बौद्ध धर्म प्रधान देश है। जापान में शिन्तो और बौद्ध धर्म की प्रधानता है। शिन्तो धर्म के इष्ट देव है सूर्य। उनके देवालयों का वर्णन राहुलजी ने किया है। सोवियत-रूस यात्रापरक कृतियों से यह स्पष्ट है कि वह किसी भी धर्म में विश्वास नहीं करता। वहाँ धार्मिक स्वतन्त्रता है। यूरोपीय देशों का प्रधान धर्म ईसाई है। प्रथा-परम्परायें धर्म से जुडा हुआ है। तिब्बती समाज में मृतक बलि का रिवाज़ है। मुर्दों को काट-काट कर पक्षियों को खिला देते हैं। उत्सव-त्योहार का भी धर्म से सम्बन्ध है। तिब्बत के भोटिया लोग बडे-बडे उत्सव मनाते थे। इन उत्सवों में स्त्री-पुरुष का सम्मिलित नृत्य होता है। ये सब किसी भी देश की संस्कृति का मुख्याधार है। राहुलजी ने इन सभी को अत्यन्त तन्मयता के साथ अपने यात्रा साहित्य में प्रस्तुत किया है।

4.4 निष्कर्ष

राहुलजी वस्तुत: एक व्यक्ति नहीं एक संस्था है। उन्होंने अपने यात्रानुभवों से जितने यात्रा साहित्य की रचना की वह विलक्षण है। राहुलजी का यायावर व्यक्तित्व विभिन्न जगहों को देखने-परखने में और हर एक देश की संस्कृति को अंकित करने में जितनी तन्मयता दिखाती है वह अन्य यात्रा साहित्यकारों में बहुत कम ही दिखाई पडती है। पहाडी यात्राओं से पार्वत्य संस्कृति की बहुरंगी चित्रों के अंकित करने में उनकी रुचि उल्लेखनीय है। हिमालय के अनेक उपेक्षित भागों के विवरण देते हुए लोक संस्कृति का एक अद्‌भुत ढाँचा ही प्रस्तुत किया गया है। भारतीय यात्राओं द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों की रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज़ आदि पर प्रकाश डाला गया है। भारतीय संस्कृति का जितना सांगोपांग चित्रण राहुलजी के यात्रा साहितिय में सुलभ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। विदेशी यात्राओं द्वारा संस्कृति के वैदेशिक रूप का भी अंकन हु है। खासतौर से

तिब्बतीय समाज और संस्कृति ज्ञानवर्द्धक होने के साथ मनोरंजक भी है। तिब्बत की धार्मिक व्यवस्था, प्रथा-परम्पराएँ, खान-पान तथा वेश-भूषा अन्य देशों से बिल्कुल भिन्न है। इन सभी का वर्णन करते हुए राहुलजी ने विश्वसंस्कृति का एक अद्‌भुत ढाँचा ही प्रस्तुत किया है।

पाँचवाँ अध्याय
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में लेखकीय व्यक्तित्व और रचनाशैली

सारांश : *यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित उनके लेखकीय व्यक्तित्व और रचनाशैली इस अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है। लेखकीय व्यक्तित्व के पाँच रूप है - यायावरी वृत्ति, इतिहास बोध, आर्य समाजी व्यक्तित्व, बौद्ध दर्शन की अभिरुचि एवं साम्यवादी जीवन दर्शन। उनके यात्रा साहित्य में आठ प्रकार की शौलियों का प्रयोग हुआ है - इतिवृत्तात्मक, भावात्मक, अलंकृत, दार्शनिक, चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक, पत्र एवं डायरी शैली।*

अध्याय पाँच
राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में लेखकीय व्यक्तित्व और रचनाशैली

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की अनन्त इच्छा शक्ति और अथक परिश्रम का प्रतिफल है उनका यात्रा साहित्य। अपने सत्तर साल के जीवन में यात्राओं द्वारा जो ज्ञान प्राप्त की है वह अत्यन्त उल्लेखनीय है। वास्तव में इन्हीं यात्राओं ने ही राहुलजी को एक साहित्यकार का रूप प्रदान किया। इस सम्बन्ध में स्वयं राहुलजी ने लिखा है - *"यात्रा ने ही मेरे हाथ में ज़बरदस्ती कलम पकडा दी और स्वयं ही लेखन शैली बनती गई। कलम के दरवाज़े को खोलने का काम मेरे लिए यात्राओं ने ही किया, इसलिए मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ।"*[1] यहाँ राहुलजी ने खुद यह अभिव्यक्त किया है कि यात्राओं ने ही उन्हें एक लेखकीय व्यक्तित्व प्रदान किया। वस्तुत: राहुलजी एक पर्यटक लेखक तथा लेखक पर्यटक थे। इन्हीं यात्राओं ने ही राहुलजी में आर्य समाजी, त्रिपिटकाचार्य तथा साम्यवादी व्यक्तित्व को रूपायित किया, एक इतिहासकार के रूप में वस्तुओं को देखने-परखने की शक्ति दी। दूसरे शब्दों में कहें तो उनके इन्हीं लेखकीय व्यक्तित्व का प्रतिफलन है उनका यात्रा साहित्य। उनके यात्रा साहित्य में प्रतिफलित लेखकीय व्यक्तित्व को मुख्यत: पाँच रूपों में विभक्त किया जा सकता है - यायावरी वृत्ति, इतिहास बोध, आर्य समाजी व्यक्तित्व,बौद्ध दर्शन की अभिरुचि एवं साम्यवादी जीवन दर्शन। वास्तव में ये उनके जीवन के पाँच पहलुएँ हैं। डॉ. नवरत्न कपूर ने 'राहुलजी का जीवन - दर्शन और उसकी प्रासंगिकता' लेख में इस

1.राहुल सांकृत्यायन; एशिया के दुर्गम भूखण्डों में; भूमिका से

सम्बन्ध में लिखा है -*"अपरिग्रह के सिद्धाँत के कारण उन्होंने बार-बार मत मतांतरों को मोडा तोडा। रूढ़ि-जर्जर संस्कारों से ग्रस्त सनातनी-चिन्तन तो तिलांजलि देकर उन्होंने आर्य समाज को अपनाया। फिर आर्य समाज को छोड़कर बौद्ध धर्म की शरण ली और अन्तत: वे उससे भी मुक्ति पाकर साम्यवादी बन गए। उनका साम्यवाद वस्तुत: "समतावाद" है, जिसे दूसरे शब्दों में विशुद्ध मानव-धर्म कहना कोई अत्युक्ति न होगी।"*[1] उनके जीवन के ये पाँचों रूप यात्रा साहित्य में प्रतिफलित है।

5.1 यायावरी वृत्ति

यात्रा राहुल सांकृत्यायन के जीवन और साहित्य का मूलमन्त्र है। राहुल जी के दर्शन या जीवन दर्शन घुमक्कड़ दर्शन है। विपुल और अतुल राहुल साहित्य की केन्द्रीय शक्ति वास्तव में उनकी यायावरी वृत्ति है। राहुलजी के इन यात्राओं पर केन्द्रित साहित्य भी बडे ही मूल्यवान है। वास्तव में उनके लिए सारा जीवन ही लेखनकार्य के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। उन्होंने अपनी यात्राओं को स्वान्त: सुखाय कहने पर भी वास्तव में स्वान्त: सुखाय नहीं रही अपितु उनका संपूर्ण यात्रा साहित्य उनके अध्येताओं को सुखद अनुभव प्रदान करते रहेंगे। पाठकों को ये साहित्य इतना प्रयोजनीय है कि एक ओर यात्रा के मनोरम दृश्य मिलने के साथ अनेक ज्ञानवर्धक बातें भी मिली है। राहुलजी शरीर, मस्तिष्क, प्राण, हृदय एवं चोतना से यात्री थे। राहुलजी के साहित्य में इसी यात्री रूप की अभिव्यक्ति हुई है। राहुलजी ने किसी विश्वविद्यालय से शिक्षा नहीं पाई है, लेकिन विश्व के विद्यालय में आँखें खोलकर खूब शिक्षा प्राप्त की है। इस व्यापक अध्ययन ने एक ओर राहुलजी को कथ्य और शिल्प के स्तर पर बहुत समृद्ध किया दूसरी ओर उन्हें एक मानवतावादी तथा विचार सहिष्णु बने। वे कहीं भी जाते थे उनकी दृष्टि खण्डहरों, शिलालेखों, मूर्तियों एवं प्राचीन साहित्य पर रहती थी। इसी आधार पर वे प्राचीन संस्कृति की खोज करते

1. जगदीश शर्मा(सं.); राहुल को हिमाचल का प्रणाम; पृ. 67

थे, भाषा और साहित्य के समस्याओं को सुलझाते थे। वस्तुत: उनकी यात्राओं का उद्देश्य ही भारतीय संस्कृति का संदेश अन्य देशों में पहुँचाना और उन देशों की प्राचीन तथा अर्वाचीन घटनाओं का विनिमय। विभिन्न विद्वानों ने उनकी तुलना ह्वेनसांग तथा फाह्यान जैसे विख्यात यात्रियों से की है। डॉ प्रभाशंकर मिश्र ने 'विश्व पर्यटक राहुल सांकृत्यायन' नामक लेख में लिखा है - *"राहुलजी की यात्राऐं सोद्देश्य हुआ करती थीं। देश-विदेश की यात्राओं ने उनके व्यक्तित्व को कई प्रकार से प्रभावित किया। उन्हें असीम अनुभव प्राप्त हुए। कष्ट, सहिष्णुता, उदारता, विचारों की विशालता, प्राणीमात्र के प्रति सहानुभूति उनके व्यक्तित्व के ये मुख्य अंग इन्हीं यात्राओं के परिणामस्वरूप बने थे।..... यात्राओं ने व्यक्तित्व के साथ उनकी लेखन कला को भी प्रभावित किया।"*[1] वस्तुत: राहुलजी की यात्राओं ने उनके व्यक्तित्व एवं लेखन कला को बहुत अधिक प्रभावित किया है। उनकी ओर यहाँ मिश्रजी ने संकेत किया है।

यायावरी वृत्ति ने राहुलजी को विभिन्न यूरोपीय तथा एशियाई भाषाओं का ज्ञान प्रदान किया। इन भाषाओं द्वारा उनकी रचनात्मक दृष्टि विशाल हुई। राहुलजी के कृतित्व में स्वच्छन्द प्रवाह है, अद्‌भुत अनासक्ति है। रचनाओं के प्रति निर्मम तटस्थ दृष्टिकोण है। ये सभी उनकी यात्राओं का परिणाम है। उनकी यायावरी वृत्ति ने उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को रूपायित किया है और उनका यह व्यक्तित्व उनके यात्रा साहित्य में सर्वत्र प्रदीप्त हो रहा है। हिमालय के प्रति स्थायी प्रेम के कारण हिमालय सम्बन्धी पाँच ग्रन्थों की रचना की है। तिब्बत की चार बार यात्रायें की और चार यात्रापरक वृत्तियों की रचना भी की। जापान, रूस, इरान, यूरोप आदि जिन-जिन देशों की यात्राओं की पुस्तकें उपलब्ध हैं, वे सभी उनकी यायावरी व्यक्तित्व का प्रतिफलन है। राहुलजी का मत है कि सच्चा घुमक्कड दुनिया को सब देते हैं और दुनिया से लेता बहुत कम है। यही सच है कि राहुलजी

---

1. डॉ.ब्रह्मानन्द; राहुल सांकृत्यायन; पृ. 158

ने अपने यात्रा साहित्य द्वारा देश-विदेश की संस्कृति, रीति-रिवाज़, रहन-सहन, भाषा तथा साहित्य का परिचय औरों को करवाया। वस्तुत: घुमक्कड-राज राहुल को ठीक से जानने के बाद ही आर्य समाजी राहुल, इतिहासवेत्ता राहुल, बौद्धानुरागी राहुल तथा साम्यवादी राहुल को ठीक-ठीक पहचाना जा सकता है।

5.2 इतिहास बोध

अपने संपूर्ण यात्रा साहित्य में राहुलजी एक ऐसे सर्जक के रूप में दिखाई देते हैं, जिनकी मुख्य चिंता मनुष्य और समाज को बेहतर बनाने की है। राहुलजी ने अपने यात्रा साहित्य में किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान का विवरण देते हुए उनके अतीत में एक महान इतिहासवेत्ता के रूप में प्रवेश किया है। उन्होंने इतिहास के अनेक मुद्दों पर दृष्टिपात करते हुए उनकी वर्तमानता को भी संस्थापित किया है। डॉ कमला सांकृत्यायन ने राहुलजी के सम्बन्ध में लिखा है -*"इतिहास की खोज में भटकते रहनेवाले राहुलजी की प्राचीन काल की पकड इतनी सूक्ष्म और इतनी मौलिक थी कि जहाँ वह अपने अनुसंधानों के बल पर बीते युग के चलचित्रों की सृष्टि कर देते थे, वहाँ वह एक ऐसी दिशा की ओर भी संकेत कर देते थे, जिधर का मार्ग लोगों को परिचित नहीं था।"*[1] राहुलजी ने अपने यात्रा साहित्य में इतिहास के माध्यम से अनेक अपरिचित स्थानों एवं घटनाओं का विवरण दिया था। उनकी इतिहास दृष्टि यात्रा साहित्य को 'स्वान्त: सुखाय' से बढकर ज्ञानवर्द्धक बना देते हैं।

राहुलजी अपने यात्रा साहित्य में स्थान-विशेष के ऐतिहासिक महत्व को अंकित किए बिना आगे नहीं बढते। 'मेरी लद्दाख यात्रा' में उन्होंने लिखा है - *"ऐतिहासिक दृष्टि से मुल्तान का एक खास दर्जा रखता है। यहाँ का सूर्य-मन्दिर एक बडा तीर्थ-स्थान था। जैसे और मन्दिरों के ऐश्वर्य ने मुसलमानों को बुलाकर अपना सत्यानाश कराया, इसी तरह इसने भी*

1. डॉ.कमला सांकृत्यायन; महामानव महापण्डित; पृ. 99

खैबर-पार के लुटेरों को दावत दी।"[1] यहाँ राहुलजी ने मुलतान के सूर्य मन्दिर का विवरण देते हुए उस प्रान्त के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डाला है। राहुलजी इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ पुरातत्त्व के पण्डित भी थे। ऐतिहासिक वर्णन के साथ उन्होंने स्थान-विशेष के पुरातात्विक अन्वेषण पर भी संकेत किया है। *"गैर्यन महाशय ने बतलाया था कि जरमा के कुछ स्तूपों के भीतर प्राचीन चित्र हैं। ढूँढते-ढूँढते हमने एक स्तूप में छोटा-सा द्वार देखा। रेंग कर भीतर गए, भीतर का दृश्य देखते हुए, रोंगटे खडे हो गए। आठ-सौ वर्ष पुराने इन चित्रों के मुखों और अड्कों को पत्थरों से कूच-कूच कर बिगाडा गया है।"*[2] 'गढवाल' कृति में केदारनाथ के मार्ग में सिर कटे गणेश की मूर्ति देख राहुलजी इस प्रदेश में रुहेलों के अत्याचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर पहुँच जाते हैं। इसी कृति में ही मैखण्डा की खण्डित शिव-पार्वती की मूर्ति देखकर रुहेलों की धर्मान्धता के बारे में भी बताया गया है। उदयगिरि के वराह की मूर्ति का वर्णन करते समय राहुलजी के इतिहासकार का रूप जागरूक है। *"चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में बनी इस वराहमूर्ति और भूदेवी का एक दूसरा भी अर्थ है। यदि वराह के मुख को हटाकर उस पर चन्द्रगुप्त का मुँह प्रतिष्ठित किया जाय, तो वह एक ऐतिहासिक घटना को व्यक्त करती है। प्रतापी समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त ने अपनी कायरतावश गुप्तवंश की पटरानी ध्रुवदेवी के साथ गुप्तलक्ष्मी के कुछ भाग को भी शकराज के हाथ में देना स्वीकार किया था। यह बात उसके अनुज चन्द्रगुप्त को पसन्द नहीं आई और उसने ध्रुवदेवी का भेस बनाकर शकराज के शिविर में जाकर शत्रु का हनन किया और इस प्रकार ध्रुवदेवी और अपने कुल की भूदेवी का उद्धार किया। वराह की मूर्ति भाव प्रकट करने में अद्भुत है, उसके रोम-रोम से शौर्य और बल फूट*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 12
2. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 102

निकलता दिखाई पडता है।"[1] यहाँ राहुलजी ने उदयगिरि के वराह की मूर्ति के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार तिब्बती यात्रा से सम्बद्ध कृतियों में मठों के वर्णन के प्रसंग में भी राहुलजी की ऐतिहासिक प्रतिभा दर्शनीय है। उनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होंने स्थान एवं वस्तु विशेष का ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्त्व केवल परिचयात्मक विवरण के रूप में नहीं बल्कि कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। 'यात्रा के पन्ने' में उन्होंने लिखा है -*"बाण ने कितना सुन्दर इस मन्दिर का वर्णन किया है। सातवीं सदी में, जबकि मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, सभी अपने चरम उत्कर्ष पर पहूँचे हुए थे, उस समय का महाकाल मन्दिर कितना सुन्दर रहा होगा, कितनी सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ अलंकार या पूजा के लिए चतुर शिल्पियों ने बनाकर वहाँ रखी होंगी ? चारों ओर कला और सुरुचि का एक राज्य फैल रहा होगा। शताब्दियों को पार कर उस सौन्दर्य की किरणों और मन्दिर में जलाई जाती धूप और दूसरी सुगन्धियों की महक आज भी हमारे पास पहूँच रही थी।"*[2] यहाँ राहुलजी उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर के प्रसंग में बाणभट्ट की 'कादम्बरी' में वर्णित मन्दिर का स्मरण कर भावविभोर हो उठते हैं। राहुलजी के यात्रा साहित्य में ऐतिहासिक वर्णन की एक और विशिष्टता यह है कि उन्होंने पुरानी दन्तकथाओं, जनश्रुतियों एवं कहावतों के भी उपयोग किए हैं जिससे यात्रा साहित्य में सरसता एवं रोचकता का समावेश होता है। 'मेरी लद्दाख यात्रा' में कश्मीरी रानी से सम्बन्धित एक कथा है जो अपने पति के विदेश में होने पर ब्राह्मण से धर्म-प्रवचन सुनकर सती हो जाती है। वास्तव में यात्रा वर्णन के बीच में आनेवाली ऐसी लोक कथाएँ उनके यात्रा साहित्य की रोचकता को बढाती है। संक्षेप में कहें तो उनके यात्रा साहित्य के मूल में कहीं-न-कहीं इतिहास

---

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 228
2. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 223

है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन्हीं यात्राओं ने ही उनकी इतिहास दृष्टि विकसित की।

5.3 आर्य समाजी व्यक्तित्व

राहुलजी ने सन् 1901-1902 ई. में पहली बार आर्य समाज के बारे में सुना। उस समय राहुलजी रानी की सराय में पढ रहे थे। केवल इतना ही सुना था कि वह देवी-देवता की निन्दा करते हैं। पहले उन्होंने आर्य समाज का खंडन करना चाहा और इस दृष्टि से स्वामी दयानन्द के 'सत्यार्थ प्रकाश' पढा।आर्यसमाजियों के प्रति उनका जो भाव है वह इस कृति को पढ़ने के बाद बदल गया।

सन् 1915 ई. में राहुलजी आर्य मुसाफिर विद्यालय में दाखिल हुआ जिससे उनमें आर्य समाज का बहुत प्रभाव पडा। आर्यसमाज के अन्तर्गत आने पर उनको देशभक्ति के विचारों एवं राजनीति से पहला परिचय प्राप्त हुआ। बाइबिल से लेकर कुरान तक के धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन और उसे खंडन की दृष्टि से खुले मंच पर भाषण, तर्क-वितर्क - इन सबसे उनका जनवादी व्यक्तित्व विकसित हो रहा था। उस समय राहुलजी की साहित्यिक प्रतिभा निखर उठी। मेरठ के हिन्दी मासिक 'भास्कर' में उनके जीवन का पहला लेख प्रकाशित हुआ। उस समय समाजोद्धार उनका मुख्य लक्ष्य था। वे सन् 1917 ई. से लेकर सन् 1920 ई. तक आर्य समाज के प्रचारणार्थ इधर-उधर घूमते रहे। सन् 1921 ई. में उन्होंने राजनीति पर कदम रखा। राजनीति और लोककल्याण में सक्रिय भाग लेने के बाद एक बार फिर घुमक्कडी की इच्छा उनमें जाग उठी। पहले वे नेपाल गए। सन् 1926 ई. में उन्होंने लद्दाख की यात्रा की। उस यात्रा के बाद उन्होंने बौद्ध दर्शन सम्बन्धी अधिक जानकारी पाना चाहा। लंका यात्रा से वे पूर्ण रूपेण बौद्ध धर्म की ओर गए।

राहुलजी की प्रारंभिक यात्रा-कृतियों में आर्य समाज का प्रभाव देखने को मिलता है। 'मेरी लद्दाख यात्रा' में उन्होंने लिखा है - *"मुलतान में*

हिन्दुओं की कई अच्छी संस्थाएँ हैं। भला हो, आर्य समाज का जिसने एक नई लहर पैदा कर दी। आज पंजाब का शायद् ही कोई ऐसा शहर हो, जहाँ आर्य समाज का कोई डी.ए.वी हाईस्कूल न हो। यही अवस्था कन्या-पाठशालाओं के बारे में भी है। बल्कि पुत्री-पाठशालायें तो आर्य समाज का एक आवश्यक अंग-सी बन गई है। मुलतान का डी.ए.वी.स्कूल एक प्रसिद्ध संस्था है। अनाथ बालक-बालिकाओं के लिए पास ही एक आर्य-अनाथालय भी है। शहर से चार मील पर गुरुकुल है, जिसमें 130 लडके पढ़ते हैं। शहर में एक सनातन-धर्म स्कूल भी है।"[1] यहाँ राहुलजी ने मुलतान के आर्यसमाजी संस्थाओं का उल्लेख किया है। आर्य समाज के डी.ए.वी हाईस्कूल, कन्या पाठशालाएँ, आर्य अनाथालय, गुरुकुल, सनातन धर्म स्कूल आदि का विवरण देते हुए आर्य समाज की कारवाइयों पर प्रकाश डाला है। 'हिमाचल' कृति में भी राहुलजी ने आर्यसमाज के कार्रवाइयों पर प्रकाश डाला है। सन् 1887 ई. में कांगड़ा में प्रथम आर्य समाजी धर्मशाला स्थापित हुई। वहाँ भूकम्प के समय आर्यसमाज के स्वयंसेवकों ने बहुत ही लगाव से काम किया, जिसका लोगों पर बहुत प्रभाव पडा। आर्यसमाज ने कांगडा, नगरोटा, भवारना, पालमपुर जैसे स्थानों में विश्राम भवन भी स्थापित किया। उसी प्रकार 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में' कृति में स-क्य मठ के महन्त के बारे में बताते समय उनका आर्यसमाजी व्यक्तित्व उभर आया। जब गृहस्थ महन्त होने लगा तब से उन्हें महात्मा का पद मिला। इसी प्रसंग में राहुलजी ने यह भी व्यक्त किया है कि आर्य समाज में भी गृहस्थ महापुरुषों को और फिर महात्मा हंसराज को दिया गया। इन प्रारंभिक यात्रा कृतियों में राहुलजी के आर्य समाजी व्यक्तित्व का प्रभाव देखने को मिलता है।

5.4 बौद्ध दर्शन की अभिरुचि

लद्दाख, लेह तथा तिब्बत सीमांत की यात्रा से बौद्ध दर्शन का गहन

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 12

अध्ययन राहुलजी का मुख्य लक्ष्य रहा। राहुलजी सन् 1927-28 ई. में श्रीलंका के विद्यालंकार परिवेण (विहार) में अध्ययन-अध्यापन के लिए गए। यहाँ वास करते समय उन्होंने पालि त्रिपिटकों का अध्ययन किया। सुत्त, विनय, अभिधम्म इन तीनों पिटकों पर असामान्य अधिकार के कारण लंका के विद्यालंकार विहार ने त्रिपिटकाचार्य की उपाधि से अलंकृत किया। इन त्रिपिटकों के अध्ययन से उन पर बौद्ध दर्शन का गहरा प्रभाव पडा। वास्तव में बौद्ध दर्शन ने राहुलजी के बौद्धिक बिखराव को समेटते हुए उसे एक स्थायी दिशा व गति प्रदान की। 'लंका' कृति में राहुलजी के व्यक्तित्व का यह पक्ष स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। इसमें उन्होंने अनुराधपुर का वर्णन करते समय जय महोबोधि वृक्ष के बारे में बताया है। *"अनुराधपुर की सबसे प्रिय, सबसे पवित्र और सबसे पुरातन वस्तु वह जय महाबोधि वृक्ष है जो बोध-गया के उस पुण्य वृक्ष की शाखा है जिसकी शीतल छाया में बैठ कर आज से 2,455 वर्ष पूर्व संसार के सबसे बडे उपदेष्टा सिद्धार्थ गौतम ने बुद्धत्व प्राप्त किया था। जय महाबोधि एक लम्बे-चौडे चार-पाँच हाथ ऊँचे चबूतरे पर है, जिसके चारों ओर खूब चौडी परिक्रमा चहारदीवारी से घिरी है। इसका प्रधान द्वार उत्तर की ओर है चबूतरे के पूर्ववाले मन्दिर में भगवान् बुद्ध की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मेले के दिनों में यहाँ भी वैसी ही भीड होती है, जहाँ शिवरात्रि को काशी-विश्वनाथ के मन्दिर में।"*[1] राहुलजी के व्यक्तित्व में बौद्ध दर्शन का गहरा प्रभाव यहाँ दृष्टव्य हैं। लंका के सर्वोत्तम बौद्ध विहार कल्याणी विहार का वर्णन भी इस कृति में है।

श्रीलंका में बौद्ध दर्शन का अध्ययन करने के बाद राहुलजी यह जान गए थे कि तिब्बत गए बिना बौद्ध दर्शन एवं उसकी सांस्कृतिक एवं दार्शनिक गुत्थियाँ सुलझ नहीं सकती। भारत से तिब्बत लिए जा चुके संस्कृत तालपत्रों की पोथियों के पुनरुद्धार के लक्ष्य से उन्होंने चार बार तिब्बत की यात्रा की। इन यात्राओं से पूर्णरूपेण बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख

1. राहुल सांकृत्यायन; लंका; पृ. 11

हुए। 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'यात्रा के पन्ने','एशिया के दुर्गम भूखण्डों में' आदि कृतियों में वहाँ के बौद्ध विहारों एवं लामाओं का वर्णन है जो उनके व्यक्तित्व में बौद्धधर्म के प्रभाव की ओर संकेत करता है। 'यात्रा के पन्ने' में तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रवेश के सम्बन्ध में विस्तार से बताया गया है। सन् 1932 ई. में वे बौद्ध धर्म के प्रचारणार्थ यूरोप गए। 'मेरी यूरोप यात्रा' में इसका वर्णन है। बाद के हिमालय सम्बन्धी रचनाओं में भी राहुलजी के बौद्ध धर्म की अभिरुचि स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है। जापान में बौद्ध धर्म की प्रधानता पर बल देते हुए लिखा है - *"जापान के रोम रोम में बौद्ध धर्म बसा हुआ है। शहर में चलें, हर सडक पर हर गली में तिरकोनी छतवाले बौद्ध मन्दिर मिलेंगे। नित्ता- जिस गाँव में पौने दो मास रहा हूँ, सिर चार हज़ार की बस्ती है - किन्तु यहाँ भी 14 बौद्ध मन्दिर हैं। खेतों या गाँवों में घूमिए, हर तीस कदम पर किसी बोधिसत्त्व - विशेषकर क्षितिगर्भ (जिज़ो बोसत्सु) की मूर्ति आपको मिलेगी।"*[1] जापान के बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में यहाँ राहुलजी ने प्रतिपादित किया है। जापान के भिन्न-भिन्न बौद्ध सम्प्रदायों के सम्बन्ध में भी उन्होंने विस्तार से बताया है। राहुलजी जहाँ भी जाते हैं वहाँ के बौद्ध धर्म का अच्छा ज्ञान प्राप्त करते हैं। ये सब बौद्ध धर्म के प्रति उनके लगाव को प्रतिपादित करता है। वस्तुत: राहुलजी के आगामीजीवन की कर्मपद्धति और वैश्विक चेतना के निर्धारण में इस बौद्ध दर्शन का काफी प्रभाव रहा।

5.5 साम्यवादी जीवन दर्शन

राहुलजी ने बौद्ध धर्म की प्रगतिशीलता को धारण कर साम्यवादी जीवनधारा में प्रवेश किए थे। इरान व सोवियत यात्रा से राहुलजी पर साम्यवाद का प्रभाव पडा। साम्यवाद का प्रभाव होने पर भी उन्हें एक मार्क्सवादी कहना उचित नहीं है। सोवियत यात्रा के पहले यूरोप गए थे। उस समय मार्क्स, लेनिन और स्तालिन के ग्रन्थों का अध्ययन किया। सोवियत

1. राहुल सांकृत्यायन; जापान; पृ. 135

भूमि उनको साम्यवाद का मूर्त्त रूप प्रतीत होती थी। सोवियत संघ में जारशाही के पतन के बाद जो राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तन हो रहे थे उन सबकी एक धुँधली सी तस्वीर ब्रिटिश शासन होने पर भारत में भी उभरने लगी। उन सबसे प्रभावित होकर राहुलजी ने एक शोषणमुक्त, वर्गहीन, समतावादी समाज का सपना देखा। 'सोवियत भूमि','सोवियत मध्य एशिया' 'रूस में पच्चीस मास','चीन में क्या देखा', 'चीन के कम्यून' जैसी कृतियों में राहुलजी के साम्यवादी व्यक्तित्व उभर आया है।

रूसी समाज का जितना प्रभाव राहुलजी पर पडा है उस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है - *"हमारे कमरों को लकडी डालकर गरम करनेवाली स्त्री, हमारे देश की मजूरिन जैसी थी। किन्तु उसके साथ भी प्रोफसर हो चाहे अकादमिक बरान्निकोफ, बराबर का बर्ताव करते हुए उससे हाथ मिलाना, उसके सामने टोप हटाकर शिष्टाचार प्रदर्शित करना कर्त्तव्य मानते थे।"*[1] यहाँ राहुलजी ने मज़दूरों के प्रति रूसी जनता के आदरभाव के बारे में बताया है जिसका गहरा प्रभाव साम्यवादी राहुलजी पर पडा। 'सोवियत मध्य एशिया' की भूमिका में उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि भारत के नव निर्माण के संकल्प को लेकर इस पुस्तक की रचना की है। उन्होंने लिखा है - *"इस पुस्तक को पढते वक्त पाठकों को अपने सामने भारत के भारतीय किसानों-मज़दूरों की गरीब-नंगी-भूखी मूर्तियाँ अवश्य सामने रखना चाहिए। सोवियत क्रांति ने हमारी ही जैसी जनता पाई थी,और उसकी उसने काया-पलट कर दी। कज़ाक, किर्गिज, उज़्बेक, तुर्कमान और ताजिक जनता के लिए कल की कालरात्रि अतीत की बात हो गई, आज यह विश्व की उन्नत जातियों में सम्मिलित हैं।"*[2] यहाँ यह स्पष्ट है कि राहुलजी के व्यक्तित्व में सोवियत-रूस यात्राओं का जितना प्रभाव है और यह भी व्यक्त हुआ है कि साम्यवादी व्यक्तित्व के निर्माण में ये यात्रायें बहुत सहायक सिद्ध हुई हैं।

---

1. राहुल सांकृत्यायन; रूस में पच्चीस मास; पृ. 79

2.राहुल सांकृत्यायन; 'सोवियत मध्य एशिया' की भूमिका से

राहुलजी का मानना है कि मानव-विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग साम्यवाद ही है। उनके लिए साम्यवाद मानवतावाद है।

संक्षेपत: राहुलजी ने जीवन में किसी का अंधानुकरण नहीं किया। उनके व्यक्तित्व की दो विशेषताएँ थीं- सत्यान्वेषण और रूढियों के विरूद्ध संघर्ष। यात्राओं से प्राप्त अनुभवों ने उन्हें साम्यवाद तक पहूँचाया। यही कारण है कि उनके यात्रा साहित्य में व्यक्तित्व की इन विभिन्न पहलुओं का स्पष्टीकरण होता गया है।

5.6 राहुलजी के यात्रा साहित्य की लेखन शैली

लेखक के हृद्‌गत भावों को प्रकट करने का ढंग है शैली, जो साहित्य के बाह्यरूप को अलंकृत करती है। यात्रा साहित्य मुख्यत: वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली में लिखा जाता है। राहुलजी ने अपने यात्रा साहित्य में विभिन्न देशों एवं स्थानों का व्यापक परिचय दिया है। इसलिए ही उनका अधिकांश यात्रा साहित्य वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली के हैं। उनके सम्पूर्ण यात्रा साहित्य को मुख्यत: निम्नलिखित शैलियों में विभाजित किया जा सकता है :-

5.6.1 इतिवृत्तात्मक शैली
5.6.2 भावात्मक शैली
5.6.3 चित्रात्मक शैली
5.6.4 अलंकृत शैली
5.6.5 दार्शनिक शैली
5.6.6 व्यंग्यात्मक शैली
5.6.7 पत्र-शैली
5.6.8 डायरी शैली

5.6.1 इतिवृत्तात्मक शैली

इतिवृत्तात्मक वर्णन ऐसे वर्णनों को कहते हैं जिसमें दृश्य या स्थान का यथावत् रूप प्रस्तुत होता है। राहुलजी के यात्रा साहित्य में इतिवृत्तात्मक

वर्णनों की प्रधानता है। सरल रूप में विभिन्न दृश्यों एवं स्थानों का सामान्य वर्णन उनका लक्ष्य है। 'मेरी यूरोप यात्रा' में पेरिस का एक वर्णन इस प्रकार है - *"मीनार से उतरकर हम उस चौरास्ते पर पहूँचे, जहाँ नेपोलियन की लायी, पुरातन चित्रलिपि से अंकित, मिश्री लाट खडी है। इसी अहाते में फ्रांस की आठ नगरियों की आठ सुन्दर स्त्रियों की पाषाण मूर्त्तियाँ हैं। सामने के बगीचे में और भी कितनी ही पाषाण-मूर्त्तियाँ, इतनी संख्या में, पेरिस से बाहर नहीं मिल सकतीं।"*[1] इस कृति में ही लंदन टावर का वर्णन, 'कुमाऊँ' पुस्तक में कत्यूर-भूमि की यात्रा में पहाडी बस यात्रा की कठिनाइयों का वर्णन, 'चीन में क्या देखा' के अन्तर्गत बर्मा का परिचयात्मक वर्णन, 'गढ़वाल' के अन्तर्गत ऋषिकेश का वर्णन, तिब्बत यात्रा में काठमण्डो, तिङरि, डोङला आदि का वर्णन इतिवृत्तात्मक है।

लन्दन टावर का वर्णन देखिए - *"लन्दन टावर पुराने ढंग का किला है; 1079 ई. अर्थात् प्राय: साढे आठ सौ वर्षों से वह किले की हैसियत से काम दे रहा है। पहिले यहाँ राजा का निवास स्थान भी था; किन्तु 1660 ई. के बाद कोई राजा चन्द दिनों के लिए भी यहाँ रहने नहीं आया। हाँ उसके बाद यह खतरनाक राजनैतिक कैदियों का कैदखाना बन गया, किन्तु 1820 ई. से वह भी बन्द हो गया। अब एक तरह से सैनिक संग्रहालय की तरह काम आता है। यहाँ के सिपाही कोट, कालर, जूते आदि कई सौ वर्ष पुराने सैनिकों का अनुकरण करते हैं। सैनिक संग्रहालय के अतिरिक्त सम्राट, सम्राज्ञी, युवराज आदि के मुकुट आदि भी इसी में रक्खे जाते हैं।.....टावर के भीतरी हिस्से से निकलकर जब हम खाई की ओर आये, तो आगे ओर उसी सूखी खाईं में सिपाहियों को परेड करते देखा।"*[2] इसी कृति में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का वर्णन भी इतिवृत्तात्मक शैली में है। कत्यूर भूमि की यात्रा का वर्णन भी उन्होंने अत्यन्त सुन्दर ढंग से की है। *"कटारमल कुछ दूर था।*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी यूरोप यात्रा; पृ. 24
2. राहुल सांकृत्यायन; मेरी यूरोप यात्रा ; पृ. 36

हमारी बस उधर से सर्राटा भरती जा रही थी। इसी समय उधर पहाडी मोड पर दूसरी ओर से दूसरी मोटर आ पहूँची। हमारी बस पहाडी से बाहर की ओर थी, ड्राइवर ने बचाने की कोशिश की, अधिक कोशिश करने का अर्थ था सीधे पाताल लोक में पहूँचना। लोगों के रोंगटे खडे हो गये किन्तु बस की दाहिनी आँख (लैम्प) बलिदान करके छुट्टी मिल गयी।"[1]

राहुलजी के समान स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, श्री महेश प्रसाद, अज्ञेय, भगवतशरण उपाध्याय, जैनेन्द्र जैसे साहित्यकारों के यात्रावृत्तों में भी इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग पर्याप्त रूप में हुआ है। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की एक इतिवृत्तात्मक शैली देखिए - *"संध्या हो गई। पानी में 'छल! छल!!' करते हुए जा रहे थे। जूता टूट गया उसको फेंक देना पडा। बाई ओर भयानक पर्वतमाला दाहिनी ओर कैलाश जी, सामने विकट मार्ग पर चले जा रहे हैं, साथी सब आगे चले गये, केवल दो जने मेरे हाथ थे। एक साथी की गलती के कारण रास्ता भूल गये। बिलकुल अन्धकार छा गया। अंधेरा! मुझे दिखाई नहीं देता, टटोल-टटोल कर पहाडी दुर्गत पथ पर जा रहा हूँ।"*[2] यहाँ स्वामीजी ने कैलाश यात्रा का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली में की है। राहुलजी ने भी अपनी दुर्गम-पर्वतीय यात्रा का वर्णन करते समय इस शैली का प्रयोग किया है। *"17 सितम्बर को मैं लेह से चला 50-60 खच्चरों का पूरा काफिला है। कुल्लू तक पहूँचने में चार जोते हैं। पहले दो पार कर तीसरे को आज पार कर जाना था, परन्तु कल शाम से ही यहाँ वर्षा और ऊपर की ओर बर्फ पडने लगी। आधीरात से तो नीचे भी बर्फ बरस रही है। इस वक्त साढे बारह बजे दिन को, जब यह चिट्ठी लिखने लगा हूँ तब सारे पहाड सफेद बर्फ से ढक गये हैं। बादल अब भी हैं। लोग कल चलने की आशा पर बैठे हैं, किन्तु यह तो अच्छे मौसम पर निर्भर है।*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; कुमाऊँ; पृ. 332
2. सत्यदेव परिव्राजक; मेरी कैलाश यात्रा; पृ. 97

देखिए - कितने दिन यहाँ रहने पडते हैं।"[1] यहाँ राहुलजी ने सरल भाषा में यात्रा में आए स्थानों, दृश्यों, मार्गों का परिचय दिया है। इस प्रकार के वर्णन में आलंकारिकता का अभाव तो नहीं है बल्कि राहुलजी व्यर्थ शब्दाडम्बर का बहिष्कार तो करते हैं।

5.6.2 भावात्मक शैली

जब लेखक यात्रा के दृश्यों से आत्मविभोर हो जाते हैं तब अपनी अनुभूतियों को भावात्मक शैली में अंकित करते हैं। राहुलजी के अधिकांश यात्रा साहित्य विवरणात्मक एवं तथ्यात्मक है फिर भी उनके यात्रा साहित्य में ऐसे वर्णन भी है जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य एवं मूर्त्तियों को देखकर भावविभोर हो उठते हैं। *"यदि मेघदूत के यक्ष के दूत को उसकी प्रेयसी के पास सन्देश ले जाना अवश्य ही था, तो उसे इसी रास्ते जाना पडा होगा, और यदि मेघदूत के रसिक पाठकों को किसी कारण से इधर आना पडे, तो उन्हें इधर के दृश्य को देखकर अपने श्रम को व्यर्थ जाने का पछतावा नहीं होगा।"*[2] यहाँ राहुलजी ने किन्नौर के दुर्गम मार्ग का वर्णन किया है। वहाँ फूँक-फूँककर पैर रखना पडता है। उस दुर्गम मार्ग का वर्णन उन्होंने भावात्मक शैली में की है।

राहुलजी ने उज्जैन का मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है - *"उज्जैन तो प्राचीन काल से अब तक इसी नाम से प्रसिद्ध और कला तथा संस्कृति के प्रकाश-स्तम्भ जैसी भारत की सात पुरियों मे सदा से इसकी गणना होती चली आई है। संस्कृत साहित्य में उज्जैन का नाम लेने ही से आदमी के हृदय में रस का संचार होने लगता है। कालिदास और विक्रम की उज्जैनी, वासवदत्ता और चारुदत्त की उज्जयिनी, सिंहासनबत्तीसी और कितनी ही मनोहर कथाओं की उज्जयिनी आदमी को बचपन से ही मधुर स्मृतियों के*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; एशिया के दुर्गम भूखण्डों में ; पृ. 3
2. राहुल सांकृत्यायन; किन्नर देश में; पृ. 1

साथ बाँध देती हैं।"[1] यहाँ राहुलजी कला और संस्कृति का प्रकाश-स्तम्भ उज्जैन के वर्णन में भावविभोर हो उठते हैं। इसी प्रकार 'कुमाऊँ' कृति में कटारमल के सूर्य-मन्दिर का वर्णन, 'किन्नर देश में' पुस्तक के अन्तर्गत किन्नौर के दुर्गम मार्ग का वर्णन, 'गढ़वाल' के अन्तर्गत केदारनाथपुरी का वर्णन उनके भावात्मक वर्णनों के परिचयात्मक हैं। राहुलजी के ऐसे वर्णनों में काव्यात्मकता आ जाती है और पाठक रसमुग्ध हो जाते हैं। कहीं-कहीं उनके इतिवृत्तात्मक वर्णन भी भावात्मक जैसे लगते हैं। 'मेरी लद्दाख यात्रा' में भोजन सम्बन्धी एक वर्णन देखिए- *"दूध डालने तथा चाय को छानकर पीने की प्रथा नहीं है। छोटी-छोटी फूल की कटोरियाँ आपके सामने आयेंगी किन्तु खबरदार आप नंगे हाथों से मत उठावें, अन्यथा आपके आचार पर सन्देह किया जाएगा। आप उसे कपड़े से पकडें? खाने के लिए यदि कुलचों की टिकियाँ आवें तो उसे भी कपडे से पकड कर खायें। कपडा चाहे साल भर से धोबी के घर न गया हो, कोई परवा नहीं, हाथ का साक्षात् श्पर्श सर्वथा निषिद्ध है।"*[2] यहाँ राहुलजी ने अत्यन्त रोचक एवं सुन्दर भाषा में कश्मीरी ब्राह्मणों के भोजन के बारे में बताया है, जिसे पढकर पाठक भावविभार हो उठते हैं। राहुलजी के ऐसे भावात्मक वर्णनों से यह स्पष्ट है कि वे प्राचीन कला एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से मुग्ध होकर भावविभोर हो उठते हैं।

5.6.3 चित्रात्मक शैली

प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन में राहुलजी ने चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। उनकी हिमालय सम्बन्धी रचनाओं में पर्वतीय प्रकृति का जो अंकन है वह चित्रात्मक शैली में रूपायित है। उनका एक वर्णन है - *"चारों तरफ घेरे हुए पहाड- जिसके पीछे की ओर हिमाच्छादित शिखरवाले पर्वत हैं -बीच में जगह-जगह लम्बे-लम्बे जलाशय, सर्प की भाँति कुटिल गति*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 223
2. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 43

की जेहलम, दूर तक सफेदे की दोहरी पंक्तियों के बीच आनेवाली सडकें, मीलो तक, शहर से बाहर भी, सेब, बादाम आदि के बागों में बने हुए छोटे-छोटे सुन्दर बँगले, हरी घासों से ढँके लम्बे-लम्बे क्रीडाक्षेत्र, सुन्दर चिनार वृक्षों की मधुर शीतल छाया के अन्दर हरी घास के मखमली फर्शोंवाली सुभूमियाँ देखने में बडी सुन्दर मालूम होती है।"[1] यहाँ राहुलजी ने कश्मीर उपत्यका के प्राकृतिक सौन्दर्य को चित्रात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के अनेक चित्रात्मक वर्णन उनके यात्रा साहित्य में देखने को मिलता है।

5.6.4 अलंकृत शैली

आलंकारिकता भावोल्लास को व्यक्त करने के लिए सहायक है। इसलिए ही राहुलजी के अधिकांश भावात्मक वर्णन अलंकृत शैली में है। राहुलजी का एक अलंकृत वर्णन इस प्रकार है -*"स्थान-स्थान पर धान के खेतों की हज़ारों फीट ऊँची सीढ़ियाँ हिमालय के किसी कोने का स्मरण दिलाती हैं। फूल से लदी हुई हरी-भरी लताएँ वृक्षों के चारों ओर से ढाँके हुए नीरस मनुष्य के हृदय में भी सरसता उत्पन्न कर देती हैं। बीच-बीच में नारियल और सुपारी के घने वृक्षों के बीतर काठ और फूस के बने हुए कुटीरों के सम्मुख, साडी पहनी हुई खडी पार्वत्य स्त्रियाँ, किन्नरियाँ-सी प्रतीत होती है।"*[2] यहाँ राहुलजी ने काण्डी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अलंकृत शैली में की है। अधिकांश यात्रा साहित्यकारों की अलंकृत शैली अलंकारों की प्रचुरता के कारण कृत्रिम हो जाती है। बेनीपुरीजी की एक आलंकारिक वर्णन देखिए - *"अहा! अहा! अहा हा! कितना सुन्दर! चारों ओर उजले बादलों से घिरा यह धूसर पहाड जिस पर उजली-उजली धारियाँ। लगता है, क्षीर समुद्र से अभी शंकरजी निकले हैं त्रिपुण्ड धारण किये हुए। हाँ क्षीर-समुद्र से विष्णु नहीं शंकर। और त्रिपुण्ड ही कैसे कहें? यहाँ तो पुंड ही पुंड*

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ. 53
2. राहुल सांकृत्यायन; लंका; पृ. 40

झलक रहे हैं।"[1] वास्तव में अलंकारों की प्रचुरता के कारण अनेक यात्रा साहित्यकारों के यात्रा वर्णनों में स्वाभाविकता समाप्त हो गई है। लेकिन राहुलजी के यात्रा साहित्य में कृत्रिमता कहीं भी नहीं है, जो निराडम्बर है।

5.6.5 दार्शनिक शैली

यद्यपि यात्रा साहित्य में दार्शनिक शैली का बहुत कम प्रयोग हुआ है फिर भी व्यक्तिगत प्रवृत्ति के अनुसार दार्शनिकता का समावेश होता है। राहुलजी प्रकाण्ड पण्डित एवं दार्शनिक होने के कारण उनके यात्रा साहित्य में कहीं-कहीं दार्शनिकता का पुट है, जो वर्णनों के बीच में आवश्यकतानुसार होता चलता है। राहुलजी का एक वर्णन है - *"थोडा ही चलकर प्राय: मील भर तक ज्वालामुखियों का ताँता लगा हुआ मिला। प्रकृति अपना नृत्य छेडते वक्त इन हज़ारों फव्वारों का खेल करना नहीं भूली थी और इध प्राणी त्राहि-त्राहि कर रहे थे। मनुष्य का भाग्य ही ऐसा है। उसे हमेशा बडे-बडे खतरों से गुज़रना पडा। अगर इतने खतरों का सामना न करना पडता तो मनुष्य न होता। चतुष्पाद ने भीषण विपत्तियों में पडकर जब अपने दिमाग और हाथ से अधिक काम लेना शुरू किया तभी वह मनुष्यत्व के पद पर पहूँचा।"*[2] यहाँ राहुलजी ने भूकम्पग्रस्त सीतामढी का वर्णन दार्शनिक ढंग से की है। राहुलजी के संपूर्ण यात्रा साहित्य में कहीं-कहीं बौद्ध एवं मार्क्सवादी रूप मुखरित है। वास्तव में उनका यह दार्शनिक रूप ही अन्य यायावरों से उन्हें पृथक करता है।

5.6.6 व्यंग्यात्मक शैली

राहुलजी ने अपने यात्रा साहित्य में समाज के अप्रगतिशील तत्त्वों पर व्यंग्य किया है। 'मेरी यूरोप यात्रा' में उन्होंने लिखा है - *"मन्दिर के भीतर कहीं उन लंगडे - अपाहिजों के सैकड़ों दण्ड टंगे हुए हैं, जो हमारी देवी की कृपा से चंगे हो गए थे। कहीं-कहीं उन जहाज़ों की तस्वीरें या नाम*

---

1. रामवृक्ष बेनीपुरी; पैरों में पंख बाँधकर; पृ. 30
2. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 408

अंकित हैं, जिनमें स्वर्गीय महारानी अलैक्जैण्डरा का नाम भी है। 'हमारी देवी' की जीती-जागती महिमा को देखकर कौन प्रभावित हुए बिना रहेगा? किन्तु हमारे एक भारतीय साथी ने कहा सभी जगह ठगी का बाज़ार एक-सा ही गर्म है।"[1] यहाँ मोर्सेल के एक गिरिजे का वर्णन है। यहाँ राहुलजी ने अंग्रेज़ों के धार्मिक आडम्बरों के प्रति व्यंग्य किया है। राहुलजी के समान अज्ञेय, ठा. गदाधर सिंह जैसे साहित्यकारों ने भी सामाजिक कुप्रथाओं, परम्परागत रूढ़ियों एवं आडम्बरों पर व्यंग्य किया है। अज्ञेय ने लिखा है - *"वहाँ, मालूम हुआ कि तीन रुपये छ: आने देकर अमुक सेर धूप दीप का प्रबंध हो सकता है और 22 रुपये 10 आने देकर मंदिर की सीढ़ी पर नाम खुदाया जा सकता है - और स्वर्ग के इन पहले और तीसरे दर्जे के टिकटों के अलावा ड्योढ़े दूसरे के भी मिलते हैं। इतना ही नहीं बिना टिकट लिये अन्य मंदिर देखे भी नहीं जा सकते। स्वयं की रेल में कभी बैठने की जगह मिलेगी जिसे यही भरोसा नहीं वह टिकट क्या खरीदता।"*[2] यहाँ अज्ञेय ने मथुरा-वृन्दावन के मन्दिरों के सम्बन्ध में कहा है। धर्म के व्यावसायिक रूप पर उन्होंने यहाँ व्यंग्य किया है। वास्तव में राहुलजी की यात्रापरक कृतियों में अन्य कृतियों की तुलना में व्यंग्यों की भरमार है। उन्होंने धार्मिक अंधविश्वासों एवं परम्परागत रूढ़ियों के विरुद्ध व्यंग्य किया है।

5.6.7 पत्र शैली

पत्र शैली का प्रयोग सामान्यत: सभी यात्रा साहित्यकारों ने किया है। अपनी यात्राओं से प्राप्त अनुभवों को जब पत्रों द्वारा दूसरों तक पहूँचाने के कार्य है तब पत्र शैली का उपयोग होता है। इस शैली में वैयक्तिकता एवं आत्मीयता का प्रतिपादन होता है। राहुलजी पत्र शैली का प्रयोग करनेवाले लेखकों में मूर्धन्य हैं। उनके यात्रा वर्णन सम्बन्धी पत्रों में अपनी प्रतिक्रियाओं

---

1. राहुल सांकृत्यायन; मेरी यूरोप यात्रा; पृ. 20
2. अज्ञेय; अरे यायावर रहेगा याद; पृ. 29

का अंकन भी होता है। जो वैयक्तिक होने पर भी जनरुचि को भी ध्यान में रखकर लिखा गया है। 'मेरी लद्दाख यात्रा','यात्रा के पन्ने', 'मेरी तिब्बत यात्रा'जैसी कृतियों में राहुलजी ने पत्र शैली का प्रयोग किया है। इनमें अधिकांश राहुलजी ने अपने अनन्य मित्र भदन्त आनन्द कौत्सल्यायन को लिखा गया पत्र है। 'यात्रा के पन्ने' में 'प्रवास के पत्र' शीर्षक के अन्तर्गत 57 पत्रों को संग्रहित किया है। इसमें भारत के पत्र, पेरिस के पत्र, जर्मनी के पत्र, लंका से लिखे गये पत्र आदि आते हैं। इन पत्रों द्वारा अपनी यात्रा के उद्देश्य को स्पष्ट करना उनका लक्ष्य है।

'भारत के पत्र' शीर्षक में उन्होंने लिखा है -

महोबोधि सभा,
कलकत्ता
5-2-33

"प्रिय आनन्दजी,

कल यहाँ पहूँचा। आज हिन्दी में एक छोटा सा व्याख्यान देना है। भदन्त उत्तम थेरी आजकल यहीं है। 'बुद्ध भगवान का जीवन और उपदेश' नामक एक सचित्र छोटी-सी 300 पृष्ठ की पुस्तकछपवा रहे हैं। इस मास में समाप्त हो जायेगी। आपके बुद्ध-उपदेश को वह छापने के लिए तैयार हैं। तैयार करके उनके पास भेज दीजिएगा। पहले उसकी विषाय-सूची के सम्बन्ध में एक पत्र अंग्रेज़ी में लिखिएगा।

गंगा का तार लंका में मिला। कल यहाँ से सुल्तानगंज जाना है। वहाँ इस मास भर रहना है।

'अनात्मवाद' और 'बौद्ध धर्म की व्याख्या' यह दोनों लेख, 'ब्रिटिश बुद्धिस्ट' के जिस अंक में निकले हैं, उनकी एक-एक प्रति उनके नाम भेज दीजिएगा।

भदन्त उत्तम स्थविर आपको आशीर्वाद कह रहे हैं।

आपका,

राहुल सांकृत्यायन

धम्मपद के हिन्दी अनुवाद का भार ले लिया है। देवप्रियजी, और पं.बनारसीदास चतुर्वेदी ने बहुत अनुरोध किया।

रा.सा. "[1]

पत्र शैली का और एक उदाहरण देखिए :-

कुल्लू

2-10-33

"प्रिय आनन्दजी,

अब मैं पहाड की ओर देखने लगा। यहाँ पतली बर्फ की तरह से ढ़के, मृत्तिक-शून्य छोटे-बड़े पत्थर हैं। सारा पहाड़ पत्थरों की खिसकाहट से सजीव-सा मालूम होता था - यह कहना अतिशयोक्ति न होगी। वह दृश्य रोमांचकारी था।.....दूर पहाड़ों पर हरी घास और लाल बूटियाँ दिखाई पड रही थीं, तो भी अभी वृक्षों का नाम न था।

- राहुल सांकृत्यायन"[2]

यहाँ राहुलजी ने कुल्लू की यात्रा का वर्णन एक पत्र के रूप में किया है। उनके इन यात्रा वर्णनों में रोचकता एवं सरसता दिखाई पडती है।

5.6.8 डायरी शैली

पत्र शैली की तरह डायरी शैली भी यात्रा साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण शैली है। अधिकांश यायावर डायरी के पन्नों में लिखित सूचनाओं के आधार पर यात्रा साहित्य की रचना करते हैं। इस शैली का प्रयोग करते समय यात्रा वर्णन के साथ लेखक के जीवन के निजी तत्त्वों का भी समावेश होता

1. राहुल सांकृत्यायन; यात्रा के पन्ने; पृ. 145
2. राहुल सांकृत्यायन; मेरी लद्दाख यात्रा; पृ.115

है।'मेरी यूरोप यात्रा','रूस में पच्चीस मास' जैसी कृतियाँ डायरी शैली में लिखित है। यात्रा में आनेवाली भौगोलिक एवं सांस्कृतिक सूचनाओं को उन्होंने डायरी शैली में प्रस्तुत किया है। ऐसे वर्णनों में उन्होंने अपने हृदय के भावों एवं विचारों का अंकन भी किया है। स्पष्टता और स्वाभाविकता के गुणों ने डायरी शैली के उनके यात्रावृत्तों को श्रेष्ठ बना दिया है। राहुलजी के समान शंकरदयाल सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे रचनाकारों ने भी इस शैली में यात्रावृत्त लिखा है।

राहुलजी की रचनाशैली की तरह उनकी भाषा में भी विशिष्टता है। तैंतीस भाषाओं के ज्ञाता राहुलजी के यात्रा साहित्य में संस्कृत, तिब्बती, रूसी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग होना सहज स्वाभाविक ही है। वास्तव में यात्राओं द्वारा ही राहुलजी ने इन भाषाओं को ग्रहण किया है। उनकी राय में संस्कृत निष्ठ हिन्दी भारत संघ की एकमात्र भाषा है। राहुलजी ने अपनी यात्रापरक कृतियों में संस्कृत शब्दों के साथ वाक्यांश का भी प्रयोग किया है। 'घुमक्कडशास्त्र' में 'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये', 'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरत:' को विधि-निषेध: आदि अनेक वाक्यांश का प्रयोग है। इन संस्कृत शब्दों एवं वाक्यांशों का प्रयोग होने पर भी उनके यात्रा साहित्य में कहीं भी क्लिष्टता या कृत्रिमता नहीं है। विदेशी यात्रा कृतियों में विदेशी भाषाओं के शब्द ग्रहण करने में भी उनको कोई आपत्ति नहीं है। 'मेरी यूरोप यात्रा' में 'टावर', 'वर्क-हाउस', 'कम्पनी', 'पार्टीशन' आदि अनेक अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग है। जिसका प्रयोग पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित वातावरण को अंकित करने के लिए होता है। अंग्रेज़ी के अतिरिक्त तिब्बत, रूसी, चीनी भाषाओं के शब्द भी उनके यात्रा साहित्य में देखने को मिलता है। उनकी तिब्बती यात्रा कृतियों में 'जोङ्' (इलाका), 'रेपा' (सूती कपडेवाला) आदि तिब्बती शब्दों का आना स्वाभाविक ही है। 'रूस में पच्चीस मास' में 'तियात्र' (रंगमंच), 'प्रोरेक्तर' (उपकुलपति), 'रुबल' (सिक्का) आदि अनेक रूसी शब्दों का प्रयोग है। विदेशी भाषाओं के शब्दों

का प्रयोग करते समय कोष्ठकों में उनके हिन्दी अर्थ भी दिये गए हैं। इसलिए पाठकों को कोई कठिनाई महसूस नहीं होती। इन शब्दों के प्रयोग से परिवेश के चित्रण में पूरी तरह सफलता मिली है। उनकी हिमालय सम्बन्धी यात्रापरक कृतियों में लोक भोषा का प्रयोग भी हुआ है। 'किन्नर देश में' पुस्तक में किन्नर भाषा की एक तालिका भी उन्होंने प्रस्तुत की है। किन्नर भाषा में पृथ्वी के लिए 'मटिङ्' शब्द, पत्थर के लिए 'रंग' शब्द, खेत के लिए 'रिम' शब्द का प्रयोग किया गया था। हिमालय सम्बन्धी कृतियों में लोक भाषा के प्रति उनका लगाव स्पष्ट है। राहुलजी की भाषा के सम्बन्ध में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद की राय है *"राहुल की भाषा एकदम बोल-चाल की है किन्तु तत्सम बहुल हैं। आवश्यकतानुसार विदेशी शब्द भी आ गए हैं। वे जिस प्रकार से आवश्यकता पडने पर फारसी के शब्दों का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार से तिब्बती, चीनी, रूसी अथवा अन्य किसी विदेशी भाषा के शब्द का उपयोग करते हैं। शायद् पहली बार दलाई लामा, पणछेन, रिंपोच्छे आदि तिब्बती शब्दों का प्रयोग राहुलजी ने हिन्दी साहित्य में किया है।"*[1] यहाँ प्रसादजी ने राहुलजी की भाषा की विशिष्टता पर बल दिया हैं। वास्तव में एक आदर्श हिन्दी भाषाई रूप का सृजन राहुलजी द्वारा हुए हैं।

राहुलजी ने भाषा की समृद्धि के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों की आवश्यकता पर भी बल दिया है। इसलिए ही उनकी यात्रा कृतियों में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी प्रयोग है। 'रूस में पच्चीस मास', में 'ईंट से ईंट बजाना', 'घुमक्कड़शाश्त्र' में 'चारों खाने चित्त करना', 'रक्त के आँसू बहाना', 'आँख बचाना' आदि मुहावरों का प्रयोग है। ' किन्नर देश में' कृति में 'दूध का जला छाछ को फूँक-फूँक कर पीता है', 'रूस में पच्चीस मास' में 'यथाशक्ति तथा भक्ति' तथा 'घुमक्कड़शास्त्र' में 'न घर

1. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद; राहुल सांकृत्यायन का साहित्य और उनकी दृष्टि; सम्मेलन पत्रिका; पृ.109

का न घाट का' आदि हिन्दी लोकोक्तियों के साथ संस्कृत लोकोक्तियों का प्रयोग भी है। 'घुमक्कड़शास्त्र' में 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रप्रजेत्', 'मेरी यूरोप यात्रा' में 'प्रथमे ग्रासे मक्षिका-पाता' आदि इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा उन्होंने भाषा को प्रभावोत्पादक एवं समर्थ बना दिया है।

5.7 निष्कर्ष

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन विलक्षण व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा उनके लेखकीय व्यक्तित्व के रूपायन में सहायक सिद्ध हुई है। राहुलजी वास्तव में स्वनिर्मित व्यक्ति है। यात्रा साहित्य में राहुलजी का जो लेखकीय व्यक्तित्व प्रतिफलित है उनके कई स्वरूप है। यायावर, इतिहासवेत्ता, आर्य समाजी, बौद्ध दार्शनिक एवं साम्यवादी के रूप में उनका जो व्यक्तित्व है वह यात्रा साहित्य को नवीन दृष्टि प्रदान करते हैं। वास्तव में इन सबके मूल में उनका लक्ष्य आस्था के विघटन एवं नवीन आस्था का निर्माण है। प्रगतिशील दृष्टि से उन्होंने संपूर्ण यात्रा साहित्य की सृष्टि की है जिनके लिए उन्होंने जो भाषा और शैली का प्रयोग किया है वह भी उल्लेखनीय है। इतिवृत्तात्मक, चित्रात्मक, भावात्मक, अलंकृत आदि जिन-जिन शैलियों का प्रयोग उन्होंने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा को सजाना-सँवारना उनका लक्ष्य नहीं था फिर भी उनकी भाषा में सरलता एवं सहजता है। भाषा की अस्वाभाविकता की रक्षा उन्होंने सर्वत्र की है। देश एवं वातावरण के अंकन में मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा की स्वाभाविकता की रक्षा की है। संक्षेपत: संपूर्ण यात्रा साहित्य में लेखकीय प्रतिबद्धता सर्वत्र विद्यमान है।

उपसंहार

उपसंहार

यात्रा वृत्तान्त साहित्यिक यात्री के यात्रानुभवों की संवेदनात्मक एवं कलात्मक प्रस्तुति है, जिसमें विश्वसंस्कृति की समग्रता, मानव-जीवन की संपूर्णता एवं प्राकृतिक जीवन की विराटता है। नवीन स्थानों को देखने और अपने सामाजिक संपर्कों को विकसित करने की प्रकृति मनुष्य में निहित है। जहाँ वास्को-ड-गामा और कोलंबस ने भारत और अमरीका जैसे देशों को खोज कर एक नई दुनिया को परिचित कराया उसी से प्रभावित होकर अनेक यायावरों ने अपने यात्रानुभवों से यात्रा साहित्य को समृद्ध किया। इस साहित्य ने संस्कृतियों के संगम द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एवं प्रेम का अभिचित्रण किया, साथ ही उसमें जीवन की संपूर्णता का चित्रण अपनी पूर्ण साज-सज्जा के साथ रहता है। विश्व समाज की समग्र झाँकी रहने के कारण यात्रा साहित्य की उपादेयता अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यात्रा साहित्य का मूल स्रोत यद्यपि वैदिक तथा संस्कृत ग्रन्थ है फिर भी हिन्दी में यह 19 वीं शताब्दी की ही देन है। इसका प्रारंभिक स्वरूप हस्तलिखित रूप में है। धीरे-धीरे इस विधा ने स्वरूप की दृष्टि से उत्तरोत्तर प्रगति की है साथ ही एक सृजनात्मक विधा के रूप में अपना स्थान भी निर्धारित किया। प्रारंभिक यात्रापरक कृतियों में प्रकृति के संवेदनात्मक चित्र खींचे गए हैं तो बाद में मानव जीवन की विडम्बनाओं एवं विषमताओं पर केन्द्रित रहे हैं। वास्तव में प्रकृति यात्रा साहित्य की अक्षय सम्पदा है। इसी प्राकृतिक सौन्दर्य ने यात्रा साहित्य को वर्णनात्मक बना दिया है। आगे चलकर वर्णनात्मकता के साथ-साथ आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ, संत्रास एवं घुटन भरे वातावरण को यात्रा साहित्य में प्रस्तुत करने का प्रयास यायावरों के द्वारा हुआ।

हरदेवीजी, श्री भगवानदास वर्मा, श्रीधर पाठक जैसे लेखकों ने प्रारम्भिक यात्रा वृत्तान्तों की रचना की है तो महापण्ड़ित राहुल सांकृत्यायन, सत्यदेव परिव्राजक जैसे साहित्यकारों ने इसे एक नवीन दिशा प्रदान की है। अज्ञेय, यशपाल, नगेन्द्र, विष्णु प्रभाकर, आलोक मेहता जैसे साहित्यकारों ने इस विधा को समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया।

बीसवीं सदी में भारत के घुमक्कड़राज बने राहुल सांकृत्यायन ने देश-विदेश की जितनी यात्राएँ कीं और जितना यात्रा साहित्य लिखा उतना उनके पहले या बाद में अन्य यायावर के लिए संभव नहीं हुआ। उनके पावों में ऐसी जिजीविषा थी जो उन्हें निरन्तर यात्रा के लिए प्रेरित करते रहे। राहुलजी ने देश-विदेश की बार-बार यात्राएँ कीं और उसके आधार पर बीस यात्रा साहित्य का रूपायन भी किया। वस्तुत: राहुल सांकृत्यायन असंदिग्ध रूप से सरस्वती के महान् वरद पुत्र थे, जिन्होंने तिब्बत से बौद्ध-ग्रन्थों के अपार भण्डार को उपलब्ध कराया। उनकी तिब्बती यात्राओं का उद्देश्य ही प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों की खोज थी। उसी प्रकार अध्यापन के लिए वे रूस गए, तब भी उनकी दृष्टि चारों ओर व्याप्त थी। यही नहीं भारतीय स्थलों की यात्रा पर केन्द्रित यात्रा साहित्य में भारतीयता की प्रतिध्वनि मुखरित है। वामपंथ के समर्थक होने पर भी राहुलजी भारतीयता के प्रति गहन आस्था रखनेवाले थे, जिस धरती या मिट्टी में उनका जन्म हुआ है उस भारत के प्रति गहन आस्था थी।

राहुलजी ने बीस यात्रापरक कृतियों की रचना की है। उनकी राय में 'तिब्बत में सवा वर्ष' इन कृतियों में सर्वोत्तम है क्योंकि वह सबसे साहसिक और सनसनीखोज यात्रा थी। संस्कृत बौद्ध ग्रन्थों की खोज में सन् 1929 ई. में उन्होंने यह यात्रा की। नेपाल के रास्ते छुपे-छुपे वे तिब्बत पहूँचे। वास्तव में ब्रिटिश, नेपाल और तिब्बत इन तीनों सरकारों की आँखों में धूल झोंककर उन्होंने यह यात्रा की थी। इसलिए ही उनके लिए सबसे प्रिय ग्रन्थ

'तिब्बत में सवा वर्ष' है। इन तिब्बती यात्राओं से प्राप्त भाषा ज्ञान ने उन्हें तिब्बती-हिन्दी कोश की रचना के लिए प्रेरित किया। 'मध्य एशिया का इतिहास' नामक ग्रन्थ के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ, जिसमें एशियाई देशों की यात्राओं से प्राप्त ज्ञानवर्द्धक बातें ही निहित है। यात्राओं ने ही उनकी सृजनात्मक शक्ति को बढाया। उनके साहित्य का बहुत बडा हिस्सा यात्रावृत्त ही है। उनकी यात्रापरक कृतियों में विभिन्न देशों की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का उल्लेख है। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों के अंकन में उनकी विशेष रुचि थी।

यात्रा साहित्य और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृति में समाज, कला, धर्म, इतिहास आदि समाविष्ट किए हैं तो यात्रा साहित्य इन सभी की कलात्मक अभिव्यक्ति है। राहुलजी जहाँ भी जाते हैं उनका सम्पर्क उन प्रदेशों के समाज, व्यक्तियों एवं उनकी-स्थिति, रीति-रिवाज़, खान-पान, वेश-भूषा आदि से रहता है। उन्होंने संस्कृति के इन समस्त स्वरूपों एवं मार्मिक घटनाओं को अपनी कृतियों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। उनका यात्रा साहित्य विश्व संस्कृति का सुन्दर दर्पण है। भारतीय यात्राओं से सम्बन्धित कृतियों में हिमाचल में फैली पर्वतीय संस्कृति को रूपायित कर देश को संस्कृति के आधार पर एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास उनके द्वारा हुआ है। 'किन्नर देश में', 'हिमाचल', 'कुमाऊँ', 'दोर्जिलिंङ् परिचय' जैसी रचनाएँ इसके उदाहरण हैं। 'रूस में पच्चीस मास', 'चीन के कम्यून', 'इरान', जैसी विदेशी यात्रापरक कृतियों में विभिन्न देश के समाज, संगठन, जाति, धर्म आदि को पूरी तल्लीनता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इरानी सभ्यता का उल्लेख करते समय उन्होंने यह भी सूचित किया है कि वहाँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए जवाज (आज्ञापत्र या राहदारी) की ज़रूरत है। वस्तुत: विभिन्न देशों की संस्कृतियों को उजागर कर भारत का सांस्कृतिक उन्नयन उनका लक्ष्य है,

साथ ही देश-विदेश की संस्कृति की प्रस्तुति द्वारा सांस्कृतिक समन्वय भी वे चाहते हैं। इससे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना जागृत करना उनका उद्देश्य है।

यायावर के रूप में राहुलजी मार्कोपोलो माने जा सकते हैं। राहुलजी के यात्रावर्णनों में भौगोलिक एवं ऐतिहासिक सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ निबन्धकार की मस्ती तथा भावुक कलाकार की संवेदनीयता प्राप्य है। 'कुमाऊँ', 'गढ़वाल', 'जौनसार देहरादून', 'सोवियत मध्य एशिया' जैसी रचनाएँ रोचक होने के साथ ज्ञानवर्द्धक भी हैं। हिन्दी यात्रा साहित्य के इने-गिने लेखकों में वे शीर्षस्थ हैं, इसमें सन्देह नहीं। राहुलजी एक ऐसे यायावर थे, जिन्होंने यात्रा के पूरे शास्त्र 'घुमक्कड शास्त्र' की परिकल्पना की। राहुलजी की राय में घुमक्कडों ने ही इस दुनिया को बनाया है। इसमें सन्देह नहीं है कि यात्राओं से ही उन्हें 'घुमक्कड शास्त्र' लिखने की प्रेरणा मिली, जो उन्होंने 'किन्नर देश में' खुद प्रकट किया है। यह भी सच है कि 'घुमक्कड शास्त्र' में उन्होंने जिन यात्रा सम्बन्धी विचारों का उल्लेख किया है वे सब उनके यात्रा साहित्य में निहित है। इस ग्रन्थ में 'जंजाल तोडो', 'विधा और वय', 'स्वावलम्बन', 'शिल्प और कला', 'धर्म और घुमक्कड़ी प्रेम' तथा 'देश ज्ञान' आदि अध्यायों में विद्याभ्यास, नैतिकता, मानव-प्रेम, श्रम, नीति आदि जीवनमूल्यों का विवेचन करते हुए अपनी सामाजिक सोच को उन्होंने स्पष्ट किया है। वस्तुत: घुमक्कडी उनके जीवन का अंगीरस था या यायावरी वृत्ति उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। इतिहासकार, आर्य समाजी, बौद्ध धर्मावलम्बी तथा साम्यवादी के रूप में उनका जो व्यक्तित्व है वह उनकी घुमक्कड़ी वृत्ति द्वारा ही हुआ है। उनके लिए जीवन ही यात्रा थी। इसलिए ही अपनी आत्मकथा के लिए 'मेरी जीवन यात्रा' नाम दिया था।

राहुलजी के यात्रा वर्णनों की अपनी एक शैली थी। पत्र तथा डायरी

शैली के द्वारा उन्होंने एक ओर यात्रा वर्णनों को साहित्यिक विस्तार दिया है तो इतिवृत्तात्मक, भावात्मक, अलंकृत, दार्शनिक, चित्रात्मक एवं व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से साहित्यिक सौन्दर्य में अभिवृद्धि की है। राहुलजी की भाषा में भी प्रौढ़ता, उत्कृष्टता तथा साहित्यिकता विद्यमान है। तिब्बती, रूसी, चीनी भाषाओं के प्रयोग से यात्रा वर्णनों की रोचकता बढ़ गई है। भाषा को सशक्त बनाने में जिन लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग किया गया है वह भी उल्लेखनीय है। वस्तुत: कलात्मक यात्रा साहित्य का प्रारम्भ राहुलजी से ही हुआ है। यशपाल, अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, निर्मल वर्मा तथा मोहन राकेश इन्हीं की परम्परा में आते हैं। फिर भी राहुलजी की रचनाओं में यात्रा के प्रति जो निर्मम-तटस्थ दृष्टिकोण है वह अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता।

राहुलजी ने देश-विदेश की यात्राओं से जो ज्ञान प्राप्त किया वह साहित्यप्रेमियों के लिए समर्पित किया। उन्होंने न केवल यात्रा साहित्य का सृजन किया बल्कि अनेक यायावरों को 'एकला चलो रे' की दिशा में मोड दिया। संक्षेपत: कहें तो राहुलजी के यात्रा साहित्य की निम्नांकित आठ विशेषताएँ हैं :-

1. नये-नये स्थानों के भूगोल, नदी-पर्वतों एवं पशु-पक्षियों का परिचय देना।
2. वहाँ के निवासियों के नृ-वंश शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करना। वे किस उप-जाति के हैं? उनकी रीति-रिवाज़ कैसा है? आदि का उल्लेख।
3. उस देश की ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थितियों का प्रस्तुतीकरण।
4. वहाँ के लोगों की भाषा, कला, साहित्य एवं लोक संस्कृति का विवरण प्रस्तुत करना।
5. वहाँ के पुरातत्त्व तथा वास्तुशिल्प का ज्ञान उपलब्ध होना।

6. वहाँ के लोगों की धार्मिक, प्रथा-परम्पराओं का परिचय कराना।
7. यायावरों के लिए उपयुक्त सौन्दर्य-स्थलों का वर्णन करना।
8. उस स्थान की वर्तमान दशा एवं भविष्य में उसके सुधार के लिए सुझाव इन यात्रापरक वर्णनों में निहित है।

निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि हिन्दी यायावर साहित्यकारों में वे शीर्षस्थ हैं। उनके यात्रापरक वर्णनों में जिन विशेषताएँ हैं वह अन्यत्र कहीं नहीं।

हिन्दी यात्रा साहित्य के स्वरूपगत विश्लेषण के साथ राहुलजी के सम्पूर्ण यात्रा साहित्य का विवेचन इस शोध प्रबन्ध का विषय रहा। प्रस्तुत अध्ययन से विदित हो गया कि राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य के साथ हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के यात्रा साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन की अनंत सम्भावनाएँ हैं। यही नहीं राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में प्रतिबिम्बित इतिहास, संस्कृति, बौद्ध धर्म आदि के सूक्ष्म अध्ययन की भी गुंजाइश है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट - एक

श्रीमती डॉ.कमला सांकृत्यायन द्वारा शोधार्थिनी के नाम पत्र

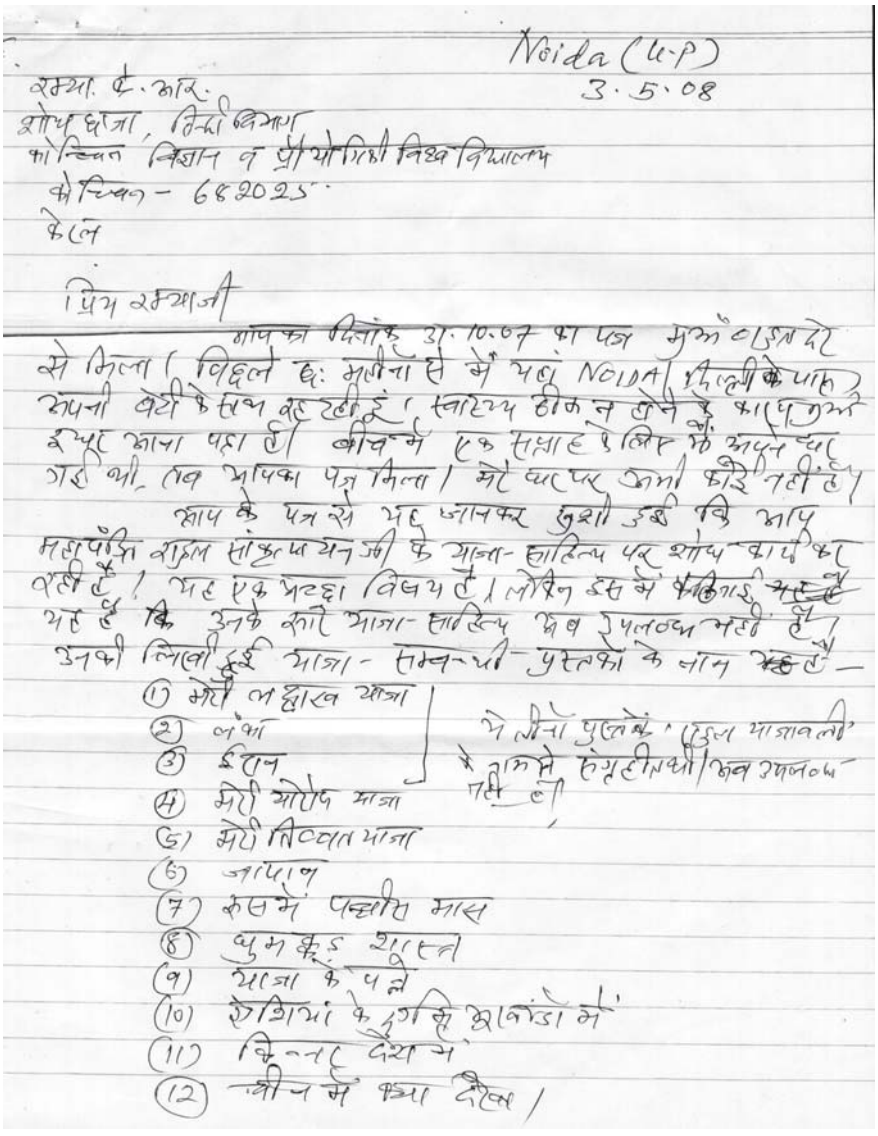

Noida (U.P)
3.5.08

रम्या. ई. आर.
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन - 682025
केरल

प्रिय रम्याजी

आपका दिनांक 31.10.07 का पत्र मुझे आज बड़ी देर से मिला। पिछले छः महीनों से मैं यहां NOIDA (दिल्ली के पास) अपनी बेटी के साथ रह रही हूं। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण मुझे इधर आना पड़ा है। बीच में एक सप्ताह के लिए मैं अपने घर गई थी, तब आपका पत्र मिला। मेरे घर पर अभी कोई नहीं है।

आप के पत्र से यह जानकर खुशी हुई कि आप महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी के यात्रा-साहित्य पर शोध कार्य कर रही हैं। यह एक अच्छा विषय है। लेकिन इस में कठिनाई यह है कि उनके सारे यात्रा-साहित्य अब उपलब्ध नहीं हैं। उनकी लिखी हुई यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकों के नाम हैं —

(1) मेरी लद्दाख यात्रा
(2) लंका
(3) ईरान
(4) मेरी यूरोप यात्रा
(5) मेरी तिब्बत यात्रा
(6) जापान
(7) रूस में पच्चीस मास
(8) घुमक्कड़ शास्त्र
(9) यात्रा के पन्ने
(10) एशिया के दुर्गम भूखंडों में
(11) किन्नर देश में
(12) चीन में क्या देखा।

(1–3:) ये तीनों पुस्तकें 'राहुल यात्रावली' के नाम से संगृहीत थीं। अब उपलब्ध नहीं हैं।

इस सूची के सम्बन्ध में आप को यह सूचना देना चाहती हूँ कि, —

(1) मेरी लद्दाख यात्रा, लंका, ईरान, बहुत पहले ~~से~~ अलग से छपी थीं, परन्तु बाद में 'राहुल यात्रावली' नामक संग्रह के रूप में किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई थीं। पर अब ये पुस्तकें तथा 'यात्रावली' अप्राप्य हैं। प्रकाशक लोग इन पुस्तकों को नये संस्करण में निकालना नहीं चाहते।
मेरे घर में भी इन पुस्तकों की प्रतियाँ नहीं हैं।

(2) 'मेरी यूरोप यात्रा' और 'मेरी तिब्बत यात्रा' का भी एक ही संस्करण छपा था, बहुत वर्ष पहले। अब ये पुस्तकें भी अनुपलब्ध हैं।

(3) इसी प्रकार 'जापान' का भी एक ही संस्करण निकला था। यह भी अब प्राप्य नहीं है।

(4) 'रूस में पच्चीस मास' पुस्तक पहले अलग से छपी थी, अब यह राहुल जी की 'मेरी जीवन यात्रा' के तीसरे खण्ड के रूप में छपी है। यह पुस्तक उपलब्ध है और इसके प्रकाशक हैं — राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली — 110002।

(5) 'घुमक्कड़ शास्त्र' उपलब्ध है, प्रकाशक हैं — किताब महल, जीरो रोड, इलाहाबाद।

(6) 'यात्रा के पन्ने' और 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में' ये दोनों पुस्तकें किताबघर, नई दिल्ली से प्रकाशित और उपलब्ध हैं।

(7) इनके अतिरिक्त राहुल जी के कुछ यात्रा सम्बन्धी लेख अन्य निबन्धों के साथ 'विविध प्रसंग' नाम से एक संग्रह छपा है। प्रकाशक हैं पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, रानी झांसी रोड, झण्डेवाला, नई दिल्ली 110005।

3

आपके लिए सब से अच्छा यह होगा कि आप राहुल जी की 'मेरी जीवन यात्रा' नामक पुस्तक के पांचों खण्ड को पढ़ लें। यह पुस्तक राधा कृष्ण प्रकाशन, अन्सारी रोड, नई दिल्ली-110002 से प्रकाशित और बाजार में उपलब्ध है। लेखक ने अपने इन पांचों खण्ड में लिखी 'मेरी जीवन यात्रा' में भी अपनी अनेक यात्राओं का वर्णन किया है। तिब्बत की चारों यात्राओं का वर्णन भी खण्ड 2 में दिया गया है।

'चीन में क्या देखा' पुस्तक के प्रकाशक हैं पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, रानी झांसी रोड, झण्डेवाला, नई दिल्ली-110005

मैं आपको यह सलाह देती हूं कि या तो आप किसी पुरानी हिन्दी पुस्तकों की लाइब्रेरी देख लें, या फिर राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली 110002 के पास पुस्तकों की सूची भेज कर अपेक्षित पुस्तकों को मंगा लें।

मेरे लिए सम्भव नहीं है कि आप को ये पुस्तक भेजूं क्योंकि मेरे पास भी उनकी कितनी ही पुस्तकें नहीं है।

राहुल जी पर शोध कार्य करना हो तो आप किन्हीं दूसरे लेखक की किताबें न पढ़कर स्वयं राहुल जी लिखित साहित्य को ही पढ़ें तो अच्छा होगा। राहुलजी की 'मेरी जीवन यात्रा' के पाँचों भाग से आपके शोधकार्य में बहुत सामग्री मिल सकती है।

मुझे यदि पत्र लिखेंगी तो दार्जिलिंग, Darjeeling के पते पर ही ~~[illegible]~~ लिखें। मैं एक महीने के बाद अपने घर चली जाऊंगी।

शुभ कामना सहित।

आपकी
कमला सांकृत्यायन

परिशिष्ट - दो

मेरी शोध-यात्रा

(शोधार्थिनी द्वारा सामग्री संकलनार्थ की गई यात्रा)

बंगाल की खाड़ी के शीर्ष तट से 180 किलोमीटर दूर नदी के बायें किनारे पर स्थित कोलकाता पश्चिम बंगाल की राजधानी है। भारत का दूसरा सबसे बड़ा महानगर होने के कारण कोलकाता का अपना गौरव है। ऐतिहासिक रूप से कोलकाता भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के हर चरण में केन्द्रीय भूमिका में रहा है। वह रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टागोर, सत्यजित राय जैसै महत्जनों का जन्म देश है। यह पूर्वी भारत तथा पूर्वोत्तर राज्यों का प्रधान व्यापारिक, वाणिज्यिक एवं वित्तीय केन्द्र है। यहाँ कोलकाता स्टॉक एक्स्चैंज भी है, जो भारत का दूसरे नंबर का सबसे बड़ा स्टोक एक्स्चैंज है। वहाँ के राष्ट्रीय पुस्तकालय, विक्टोरिया महल, बोट्टानिक्कल गार्डन जैसे स्थान यात्रियों को सदा आकर्षित करते रहते हैं।

कोलकाता में यातायात के प्रचुर साधन उपलब्ध हैं। रेल से, बस से, हवाई जहाज़ से कोलकाता जाया जा सकता है। हावड़ा रेलवे का महत्त्वपूर्ण स्टेशन है। यहाँ से भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम को जोड़नेवाली रेल सेवाएँ उपलब्ध हैं। एन.एच-2 कोलकाता को दिल्ली से जोड़ता है और एन.एच-6 मुम्बई से भी। नेताजी सुभाष चन्द्रबोस इन्टरनाश्नल एयरपोर्ट से भारत के विभिन्न स्थानों तथा विदेशों में हवाई जहाज़ से भी जाया जा सकता है।

ऐतिहासिक महत्त्ववाले इस शहर को देखने का सुअवसर मुझे भी प्राप्त हुआ। शोध सामग्री संकलनार्थ की गयी इस यात्रा में पति भी मेरे साथ

थे। पन्द्रह दिसम्बर 2008 शाम को हमारी यात्रा शुरू हुई। हमने पहले से ही तय किया था कि केरल से चेन्नै तक रेल में और वहाँ से हवाई जहाज़ से चला जाए। पाटना एक्सप्रेस में हमारी यात्रा शुरू हुई। केवल एक रात बीत जाने पर हम चेन्नै सेन्ट्रल रेलवे स्टेशन पहूँचे। वहाँ विश्राम और नाश्ते के बाद एयरपोर्ट की ओर निकले।

रास्ते में लगा कि चेन्नै एक नवीन शहर के रूप में बदल गयी है। पुराने टूटे-फूटे मकानों के स्थान पर नये-नये फ्लैट, बस, रोड़ सभी बिल्कुल भिन्न है। लगभग एक घण्डे की यात्रा के बाद एयरपोर्ट पहूँच गए। मेरी पहली हवाई जहाज़ की यात्रा थी। सबेरे ग्यारह बजकर दस मिनिट होते ही स्पाइस जेट एयरवेय्स के एस.जि. 352 फ्लाइट से यात्रा शुरू हुई। एयरहोस्टस ने हवाई जहाज़ के सभी नियमों को समझाया, यह भी बताया कि चेन्नै से कोलकाता तक 1450 किलोमीटर दूरी है और दो घण्डे की यात्रा के बाद वहाँ पहूँचे। खिड़की से देखने पर ऐसा लगा कि हम देवलोक से गुज़र रहे हैं। सफेद सागर में लहलहाते जहाज़ पर हम आगे बढ़े। दोपहर को एक बजते ही हम कोलकाता के नेताजी सुभाषचन्द्रबोस इन्टरनाशनल एयरपोर्ट पहूँचे।

दोपहर का समय होने पर भी वहाँ का मौसम बहुत ठंडा था। वहाँ से एक प्री-पेयड टैक्सी में हम तूलिप हाउस गए। मित्र अत्तनुजी ने वहाँ रहने की सभी व्यवस्थाएँ की थीं। कोलकाता पहली बार देखने की उत्सुकता मेरे मन में थी। छोटे शहरों के प्राणी अगर अकस्मात ही अपने आपको एक महानगरीय वातावरण में डाल दें तो कैसा महसूस करेंगे। ऐसी ही भावनायें मेरे मन में भी जगी। एयरपोर्ट से दूर-दूर जाने पर कोलकाता का असली रूप सामने आया। आगे-आगे जाने पर यही दिखाई पडता था कि सड़क दोनों ओर गन्दगी से भरी हुई है। सड़क के दोनों ओर छोटी-छोटी झोंपडियों पर लोग बसते हैं। वहाँ पर वे रहते हैं, खाते हैं, नहाते हैं और सोते हैं। बच्चों

का चेहरा भूख-प्यास से उदासीन है। एक घण्डे की यात्रा के बाद हम तूलिप हाउस पहूँचे। वहाँ हमारे आतिथ्य के लिए अत्तनु के मित्र शन्तनु और उनके सेवक दीपांकुर थे। वह जगह हमें अच्छी लगी। उन लोगों ने हमें खाने के लिए रोटी और आलूदम दिया। आलूदम आलू से बना हुआ एक भोजन है। अत्तनुजी ने दीपांकुर से आगामी दिनों के लिए भी हमारे भोजन की व्यवस्था की।

शाम को हमारे बन्धुजन देवराजनजी और सरस्वतीजी को देखने के लिए गए। देवराजनजी सालों पहले वहाँ आए थे, वे आज वहाँ के निवासी बन गए थे। उनके साथ पि.टी.नायर के पास गए। पि.टी.नायर राष्ट्रीय पुस्तकालय के एक अभिन्न अंग हैं। वे 69-70 साल का बूढा आदमी है। वे सालों पहले नौकरी के लिए कोलकाता गए थे। अन्त में कोलकाता के इतिहासकार के रूप में ख्याति प्राप्त की। उनके मुँह से कोलकाता तथा राष्ट्रीय पुस्तकालय से सम्बन्धित अनेक जानकारियाँ हमें मिली। अगले दिन राष्ट्रीय पुस्तकालय में दर्शन होंगे ऐसा वादा देकर हम लोगों ने विदा माँगी।

बस में बहुत भीड थी। रात को आठ बजते पर भी पुरुषों और स्त्रियों की संख्या कम न थी। वहाँ के सभी लोग रात को चीज़ें खरीदने के लिए निकलते हैं। संध्या होते ही गलियों में दूकानें लगती हैं। केरल की तुलना में वहाँ की बसें और टैक्सियाँ बहुत पुरानी है। बसें चारों ओर लम्बे सीटवाले हैं, जो सीटें लकड़ी से बना हुआ है। स्त्रियों को बैठने के लिए अलग जगह है। बसों को 3 C/1, 18 C जैसे नम्बर दिया है। देशप्रिया पार्क आते ही देवराजनजी और सरस्वतीजी विदा लेकर चलती गई।

अगले दिन अर्थात् 17 दिसम्बर को सबेरे ही हम राष्ट्रीय पुस्तकालय गए। हमारे आवास स्थान से पुस्तकालय के लिए सीधा बस तो नहीं था। इसलिए 3 C/1 पकड़कर कालीगढ़ जाकर वहाँ से 1 A बस में चले। वहाँ पि.टी.नायर हमारी इन्तज़ार में थे। उनकी सिफारिश से हम अन्दर पहूँचे।

वह बहुत बड़ा पुस्तकालय है। नये और पुराने अनेक मकानों में विभक्त है। गेट से अन्दर पहूँचते ही दायीं ओर एक पुराना मकान देखा। वह बच्चों का पुस्तकालय है। उसके बगल में एक भोजनशाला है। उसके ऊपर कर्मचारियों का ऑफिस है। वहाँ से कुछ दूर है पुस्तकालय का मुख्य ऑफिस और रीडिंग सेक्शन। इस पुस्तकालय का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि भारत के किसी भी कोने में प्रकाशित पुस्तक की एक प्रति वहाँ ज़रूर उपलब्ध होगा।

पि.टी.नायरजी से राष्ट्रीय पुस्तकालय सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिली। सन् 1836 ई.में कोलकाता के पब्लिक लाइब्रेरी के रूप में इसकी स्थापना हुई। पहले यह कोई सरकारी संस्थान नहीं था। सन् 1891 ई.में इम्पीरियल लाइब्रेरी का गठन हुआ सचिवालय पुस्तकालयों को मिलाकर इसका गठन किया गया था। भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल, एक ऐसे व्यक्ति थे जो इस विचार से सहमत थे कि इन पुस्तकालयों को मिलाकर जनता के व्यवहार के लिए खोल दिया जाए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पहली फरवरी, 1953 ई.को इसे राष्ट्रीय पुस्तकालय नाम से जन-सामान्य के लिए खोल दिया गया।

नायरजी से बातचीत करते हुए जाते समय मेरी दृष्टि चारों ओर गयी। वहाँ के पेड़-पौधों को सजाने में भी विशेष रुचि दिखाई पड़ती है। कई प्रकार की रंगीन फूलों से सुशोभित पुस्तकालय का आंगन दर्शनीय ही है।

नायरजी की सिफारिश से हम दोनों को पढ़ने और लिखने के लिए कार्ड भी मिला। रीडिंग सेक्शन के अन्दर पहूँचने पर उन्होंने वहाँ की सभी व्यवस्थाओं के बारे में हमें समझाया। पुस्तकों की सूची भी उन्होंने दिखा दी। कैट्लोग से पुस्तकों की संख्या, नाम, लेखक आदि एक फॉर्म में लिखकर देने से हमें पुस्तकें प्राप्त हुई। उन्होंने वहाँ दो - तीन कर्मचारियों से हमारे बारे में बताया। जॉन नामक एक शोध छात्र से भी मिलवाया। सबसे पहले 'दोर्जेलिङ् परिचय' ग्रन्थ मिला। उसे पढ़ते समय ऐसा लगा कि इतनी तल्लीनता से अब तक नहीं पढ़ा है। क्योंकि उस लम्बे कमरे में अनेक लोगों

के होते हुए भी कोई हलचल नहीं था। नायरजी से विदा लेने के पहले उन्होंने यह भी बताया था कि पुस्तक का केवल एक तिहाई फोटो कॉपी लिया जाए। इसलिए ही पढ़ना शुरू किया गया। दोपहर को वहाँ कोई भी खाने के लिए बाहर नहीं जाते थे। जॉनजी ने हमें भोजनशाला दिखाया था वहाँ केरलीय भोजन मिलता है। हमने वहाँ जाकर मसालदोशा खाई। वहाँ बैठने के लिए कोई जगह नहीं है। सभी लोग खड़े होकर खाते हैं। हमने भी खड़े होकर खाया और वापस आकर अध्ययन शुरू किया। नाशनल लाइब्रेरी का समय सबेरे नौ बजे से शाम के पाँच बजे तक है। पाँच बजते ही हम भी बाहर आए।

आगे के दिनों में भी यह प्रक्रिया ज़ारी रही। दो दिनों से 'कुमाऊँ' और 'दोर्जेलिङ् परिचय' के एक तिहाई भाग की फोटो कॉपी करायी और 'चीन के कम्यून' पुस्तक कुछ अंश पढ़ा भी। दूसरे दिन दोपहर को जॉनजी ने 'आजकल' पत्रिका के संवाददाता बिब्लब गुप्ता से मिलवाया। उनसे हमें 'बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी' का पता चला। उन्नीस दिसम्बर को हम नायरजी के साथ एम.जी.रोड गए। मेट्रो रेल पर थी हमारी यात्रा। मेट्रो पर मेरी पहली यात्रा थी। लगभग 20-25 मिनट के बाद एम.जी.रोड पहूँचे। बस से जायें तो दिन भर की यात्रा थी। मैं ने सोचा था कि यदि केरल में उसी प्रकार के मेट्रो रेल हो तो कोच्चिन से तिरुवनन्तपुरम तक जाने के लिए आधा घण्डा भी नहीं लगेगा। एम.जी.रोड में किताबों की दूकानें देखकर चकित हो गई। लगभग सौ से ज़्यादा छोटी-छोटी दूकानें हैं। अधिकांश पुस्तकें बंगला और हिन्दी भाषा के हैं। राहुलजी से सम्बन्धित दो-तीन कृतियाँ वहाँ से मिली। मेट्रो से लौटा। दोपहर होने के कारण कालिगढ़ में भोजन के लिए रुके। बाहर का भोजन पसन्द न होने के कारण नायरजी ने कुछ भी नहीं खाया।

उसी दिन शाम को हम शहर देखने के लिए बाहर गए। रात के सात बजने पर भी कोलकाता की भीड़ में कोई कमी नहीं दिखाई दी। वहाँ के

लोगों को घूमने-फिरने में विशेष रुचि थी। बड़ी-बड़ी दूकानों में उतनी भीड नहीं थी जितनी गलियों की छोटी-छोटी दूकानों में थी। बड़े-बड़े होटलों में भी कोई नहीं था। सभी लोग छोटे-छोटे भोजनशालाओं से खाते थे।

बीस दिसम्बर को हर दिन की तरह राष्ट्रीय पुस्तकालय गये। दोपहर को बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी की खोज में निकले। पिछले दिन की तरह मेट्रो से थी हमारी यात्रा। अन्त में ढूँढ-ढूँढकर वहाँ पहूँचे। एक छोटा-सा लाइब्रेरी है। फिर भी राहुलजी की पाँच यात्रा कृतियाँ वहाँ से प्राप्त हुई। वास्तव में उत्तरप्रदेश के कुछ निवासी वहाँ रहते थे। उन्होंने यह लाइब्रेरी खोला था। शाम को 6 बजे से 8 बजे तक यह खुलता है। आसपास के लोग वहाँ बैठकर समाचार पत्र पढ़ा करते हैं। सात बजते ही वहाँ के सचिव जय गोपाल गुप्ता से हमारी मुलाकात हुई। वह अच्छी तरह हिन्दी जाननेवाले थे। हम केरल से पुस्तकें ढूँढकर वहाँ पहूँचे हैं - यह सुनकर वे चकित हुए। उन्होंने बहुत खुशी से सभी कृतियों का क्सिरोक्स कराकर देना चाहा इसके लिए अगले दिन आने के लिए कहा। वास्तव में वह दिन हमारे लिए बडी खुशी का दिन था।

अगले दिन रविवार होने के कारण छुट्टी लिया। देवराजनजी के घर में भोजन के लिए गए। शाम तक वहाँ रहकर अपना निवास स्थान लौटा। हर दिन की तरह बाईस दिसम्बर को भी सबेरे ही राष्ट्रीय पुस्तकालय की ओर चल पडा। दोपहर तक वहाँ रहकर पढ़ने के बाद बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी गए। बिना पूछे बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी के फोटो खींचने की कोशिश की। वहाँ के लोग शोर मचाकर सामने आए। उनका कहना था कि हम लोग कौन है? यह कैसे मालूम? क्योंकि उसके कुछ दिन पहले ही मुम्बई के ताज होटल में आतंकवादियों का आक्रमण हुआ था। हमने उनसे माफी माँगी। वहाँ से यही जानकारी मिली कि एक किलोमीटर दूरी पर कुमार सभा पुस्तकालय है। वहाँ भी हिन्दी साहित्य की पुस्तकें ज़रूर होगी। अन्त में

हमने ढूँढ निकाला। गन्दगी भरे गली में एक छोटे मकान में थी। लेकिन अन्दर पहूँचते ही हम चकित हुए। एक बहुत बड़ा कमरा है, साफ-सुथरा है, पंखा भी है। लेकिन आसपास के मकान और गलियाँ गन्दगी से भरी हुई है। केरल से वहाँ तक हिन्दी ग्रन्थों की खोज में आते देखकर वे भी चकित हुए। वे भी दो ग्रन्थों का फोटो कॉपी कराकर देना चाहा। उनके मुँह से राम मन्दिर पुस्तकालय के बारे में सुना। दस-पन्द्रह मिनट यात्रा के बाद वहाँ पहूँचे। वह भी एक बड़ा पुस्तकालय है, नीचे राम का मन्दिर और ऊपर पुस्तकालय। वहाँ के सचिव को देखते ही मालूम हुआ कि वे उत्तरप्रदेश के हैं। क्योंकि वे लम्बा कुर्त्ता पहनते थे। सिर पर टोपी भी है। वहाँ से भी दो कृतियाँ प्राप्त हुई। वास्तव में ये तीनों पुस्तकालय हिन्दीवालों का है। ये कोलकाता के हिन्दीवालों को पढ़ने के लिए ही थे। उस दिन वास्तव में हमारी यात्रा की पूरी सफलता प्राप्त हुई। केवल 'चीन के कम्यून', 'चीन में क्या देखा' और 'जौनसार देहरादून' को छोड़कर शेष सभी किताबें प्राप्त हुई। इन तीनों को राष्ट्रीय पुस्तकालय में ही रहकर अध्ययन करना तय किया।

पच्चीस दिसम्बर को क्रिस्तुमस का दिन होने के कारण हमने छुट्टी ली। इधर-उधर घूमने के लिए निकले। पहले ही बोट्टानिकल गार्डन देखना चाहा। बोट्टानिकल गार्डन हावड़ा में था। वहाँ तक जाने के लिए लगभग डेढ़ घण्डे का समय लगा। यह गार्डन विश्व के बहुत बड़े बोट्टानिकल गार्डनों में दूसरा है। अंग्रेज़ों ने ही इसे बनाया। छुट्टी होने के कारण बहुत भीड थी। वहाँ के पीप्पल का वृक्ष मुख्याकर्षक है। उसकी आयु दो सौ साल थी। वहाँ के बोर्ड में लिखा था कि इसके 3000 से ज़्यादा मूल नीचे ज़मीन के अन्दर थी। मुख्य पेड काटा गया था। अब जो देखा था वे सब मूल थे। दूर से देखने पर ऐसा लगा कि बहुत बड़ा जंगल है। कुछ समय वहाँ ठहरने के बाद बाहर गए।

वहाँ से बेलूर मठ की ओर रवाना हुए। वहाँ अत्तनु हमारे इन्तज़ार

में थे। उन्हें ढूँढ निकालने में कुछ कठिनाई हुई। क्योंकि वहाँ उतनी भीड थी कि ज़मीन पर पैर रखने के लिए भी जगह नहीं थी। बेलूर मठ वह स्थान है जहाँ श्री रामकृष्ण परमहंस की समाधि है। यहाँ श्री स्वामी विवेकानन्द का आश्रम भी था। हूग्ली नदी के किनारे स्थित यह मठ अत्यन्त सुन्दर और विशाल था। वहाँ के बगीचे यात्रियों को सदा आकर्षित करते थे। मठ के अन्दर घुसते ही मन प्रसन्न हो जाता है। नदी की ओर से आती शीतल हवा, सर्वत्र हरियाली और बीच-बीच में बने भव्य मन्दिर यात्रियों को आकर्षित करते हैं। मठ के अन्दर परमहंसजी की मूर्ति थी। क्रिस्तुमस के दिन होने के कारण येशु की मूर्ति भी थी। विवेकानन्द का मठ भी देखा। हरी-भरी मैदोनों और कलकल करती बहनेवाली हूग्ली नदी के तट पर होने के कारण उस मठ का सारा भाग दर्शनीय है। प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर होने पर भी हलचल एवं भीड़ के कारण वहाँ कोई शान्ति नहीं मिली। हूग्ली नदी के पार दक्षिणेश्वर मन्दिर थे। इस मन्दिर में श्रीरामकृष्ण परमहंस को दक्षिणेश्वर काली ने दर्शन दिया था - ऐसा कहा जाता है। समय के अभाव के कारण वहाँ न जा सके।

वहाँ से रेलगाड़ी में हावड़ा पहूँचे। हावड़ा स्टेशन से बोट जेटी चले। रात होने के कारण दीपालंकृत हूग्ली नदी का दृश्य सुन्दरतम था। दीपों से चमकनेवाले हावड़ा पुल भी अवर्णनीय थे। पार्क स्ट्रीट आते ही अत्तनुजी ने हमें पानी-पूरी खिलाया। वहाँ का सबसे अच्छा भोजन था। पार्क स्ट्रीट कोलकाता के अन्य प्रान्तों की तुलना में एक अलग स्थान है। बड़े-बड़े लोगों का निवास स्थान है। क्रिस्तुमस के दिन होने के कारण दीपालंकृत थी। माहौल भी उत्सव का है। युवक-युवतियाँ चुस्त चमकदार पोशाकों में हर जगह हँसते खिलखिलाते नज़र आ रहे थे। वहाँ कहीं भी भुखमरे लोगों को नहीं देखा।

छब्बीस दिसंबर को घर से निकलते ही मन में केवल दो ही विचार

था। राष्ट्रीय पुस्तकालय में बैठकर शेष कृतियों को पढना और कुमार सभा लाइब्रेरी तथा राम मन्दिर लाइब्रेरी जाकर किताबों के क्सिरोक्स एकत्रित करना। शाम को हम वहाँ के थियेटर में जाकर सिनेमा भी देखा। आगे के दिनों में भी राष्ट्रीय पुस्तकालय जाकर अध्ययन करना, वही प्रक्रिया जारी रही। सत्ताईस दिसम्बर को हम राष्ट्रीय पुस्तकालय से जल्दी निकले। क्योंकि वहाँ के विक्टोरिया टेर्मिनल देखने की इच्छा मन में आई। सन् 1921 ई. में इसकी स्थापना हुई। 17 साल में बनाई इस टेर्मिनल के लिए सात करोड़ से ज़्यादा खर्च लगी। इसमें एक आर्ट ग्यालेरी और म्यूज़ियम है। विक्टोरिया रानी के लिए ही इसकी बनावट हुई। टेर्मिनल के पास ही घोड़े का रथ था जिसपर लोग सवार किया करते थे। हमने भी उस पर सवार किया। घोड़े और गाडी यात्रियों को आकर्षित करने के लिए अच्छी तरह सजाया था। टेर्मिनल के साथ ही म्यूज़िकल फौन्टेन भी है जो यात्रियों को सदा आकर्षित करते रहते हैं।

अगले दिन भी पुस्तकालय में बैठकर अध्ययन किया। शाम को देवराजनजी के घर में गए। क्योंकि वहाँ से विदा लेने के लिए हमें केवल एक ही दिन शेष रह गया था। लौटते समय पि.टी.नायरजी के लिए एक स्वेटर भी खरीदा। उनतीस दिसम्बर को मैं कभी नहीं भूलूँगी। राष्ट्रीय पुस्तकालय जाते समय बस में किसी ने मेरा मोबैल फोण चुरा लिया। मुझे बहुत दुख हुआ फिर भी कोलकाता यात्रा की पूरी सफलता प्राप्त होने के कारण उस घटना को भुला दिया। पुस्तकालय आते ही हमने देखा कि नायरजी हमारी प्रतीक्षा में खड़े हैं। हमने उसे स्वेटर दिया। पहले वे उसे स्वीकारने के लिए संकोच प्रकट करने लगे। लेकिन अन्त में उन्होंने स्वीकारा। पन्द्रह दिन तक वहाँ रहकर अध्ययन करने की एक सर्टिफिकट के साथ हमने वहाँ से विदा माँगी।

शाम को हम पि.टी.नायरजी के घर और कालीमन्दिर जाना चाहा।

वास्तव में वह दिन हमारे लिए धोखे का दिन था। कालीमन्दिर जाते वक्त वहाँ के धोखेबाजियों ने हमें भी पकड़ा। उनके निर्देशानुसार हमने मन्दिर में सभी अनुष्ठान किया। बाहर आने पर हमसे 500 रु. उन्होंने किसी न किसी नाम पर वसूल किया। हमारे यहाँ के मन्दिरों के दर्शन की जैसी सफलता वहाँ नहीं मिली। सभी जगह गन्दगी है। पैर रखना भी नहीं चाहते थे। एक मन्दिर के लिए आवश्यक स्वच्छता और सुन्दरता वहाँ नहीं थी। नायरजी की प्रतीक्षा में हम खडे रहे। उन्होंने राहुलजी से सम्बन्धित अंग्रेज़ी किताब मुझे दी। बहुत खुशी से मैं ने उसे स्वीकारा। उनसे भी विदा लेकर हम तूलिप हाउस आकर जाने के लिए सभी तैयारियाँ की थी। अगले दिन अर्थात् तीस दिसम्बर को हम लौटना चाहते थे। दीपांकुर ने हमें जाने के लिए गाडी भी तैयार कर रखी थी। वे उस समय हमारे लिए चाय भी लेकर आए थे। लौटते समय मेरे मन में यही विचार था कि पन्द्रह दिन कैसे बीत गए? एक दूसरे देश होने पर भी हमें किसी प्रकार की मुज़ीबत नहीं झेलनी पड़ी। शन्तनुजी, अत्तनुजी, देवराजनजी, पि.टी.नायरजी तथा दीपांकुर को मैं कभी नहीं भूल पाऊँगी। सात बजे ही एयरपोर्ट पहूँचे। साढ़े आठ बजे हम उस बड़े शहर से विदा ली।

शोध-यात्रा तो कभी समाप्त नहीं होती। कोलकाता यात्रा की स्मृतियाँ हमेशा ताज़ी रहेगी।

®É¹]ÌÒªÉ {ÉºÉÊ¡ÉEòÉ±ÉªÉ, EòÉ±ÉEòÉÊ¡ÉÉ

Ê´ÉC]ÉÊ®ÉªÉÉ ¨ÉÉ½±É, EòÉ±ÉEòÉÊ¡ÉÉ

®ÉÚ¹]ÅõÒªÉ {ÉÖºiÉEòÉ±ÉªÉ ¨Éå ¶ÉÉävÉÉÊlÉxÉÒ

EòÉ±ÉEòÉiÉÉ Eòä]ÅÉ¨É

परिशिष्ट - तीन (क)
राहुलजी का रचना संसार

यात्रा साहित्य	प्रकाशक	प्रथम संस्करण
मेरी लद्दाख यात्रा	किताब महल, इलाहाबाद	1926
लंका	किताब महल, इलाहाबाद	1927
तिब्बत में सवा वर्ष	शारदा, नई दिल्ली	1933
मेरी यूरोप यात्रा	किताब महल, इलाहाबाद	1932
जापान	लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद	1935
मेरी तिब्बत यात्रा	किताब महल, इलाहाबाद	1932
यात्रा के पन्ने	साहित्य सदन, देहरादून	1952
एशिया के दुर्गम भूखण्डों में	नवभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	1956
इरान	इंडियन प्रेस, इलाहाबाद	1937
सोवियत भूमि	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	1939

सोवियत मध्य एशिया	साहित्य निकेतन, इलाहाबाद	1947
रूस में पच्चीस मास	आलोक प्रकाशन, बीकानेर	1952
किन्नर देश में	इंडियन पब्लिशर्स, इलाहाबाद	1948
दोर्जेलिङ् परिचय	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता	1950
गढ़वाल	लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद	1953
जौनसार देहरादून	विद्यार्थी ग्रंथागार, इलाहाबाद	1955
कुमाऊँ	ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी	1956
हिमाचल - दो भाग	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	1994
चीन में क्या देखा	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	1959
चीन के कम्यून	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	1959
नेपाल	अप्रकाशित	
यात्रा निबन्ध संग्रह	अप्रकाशित	
राहुल यात्रावली	—	——

उपन्यास

बाइसवीं सदी	युगांतर पुस्तक, माला कार्यालय,पटना	1931

जीने के लिए	वाणी मन्दिर, छपरा	1940
मधुर स्वप्न	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता	1950
सिंह सेनापति	किताब महल, इलाहाबाद	1944
राजस्थानी रनिवास	राहुल प्रकाशन, मसूरी	1953
विस्मृत यात्री	किताब महल, इलाहाबाद	1954
जय यौधेय	किताब महल, इलाहाबाद	1944
दिवोदास	किताब महल, इलाहाबाद	1960
जादू का मुल्क (अनु.)	किताब महल, इलाहाबाद	1942
शैतान की आँख (अनु.)	किताब महल, इलाहाबाद	1945
विस्मृति के गर्भ में (अनु.)	किताब महल, इलाहाबाद	1945
सोने की ढाल (अनु.)	किताब महल, इलाहाबाद	1942
जो दास थे (अनु.)	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना	1948
अनाथ (अनु.)	इंडियन पब्लिशर्स, प्रयाग	1948

सूदखोर की मौत (अनु.)	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना	1957
दाखुन्दा (अनु.)	किताब महल, इलाहाबाद	1948
अदीना (अनु.)	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना	1951
शादी (अनु.)	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	1952
निराले हीरे की खोज (अनु.)	किताब महल, इलाहाबाद	अनुपलब्ध

कहानी

सतमी के बच्चे	किताब महल, इलाहाबाद	1935
वोल्गा से गंगा	किताब महल, इलाहाबाद	1942
बहुरंगी मधुपुरी	राहुल प्रकाशन, मसूरी	1953
कनैली की कथा	किताब महल, इलाहाबाद	1957

भोजपुरी नाटक (दो जिल्दों में)

पाँच नाटक	अच्चुतानन्द सिंह द्वारा प्रकाशित, छपरा	1944

(1) जपनिया राछछ

(2) देस-रच्छक

(3) जरमनवां के हार निहिचय

(4) ई हमार लडाई

(5) ढुनमुन नेता

तीन नाटक	किताब महल, इलाहाबाद	1944

(1) नइकी दुनिया

(2) जोंक

(3) मेहरारून की दुरदसा

राजनीति, साम्यवाद

साम्यवाद ही क्यों ?	युगांतर पुस्तकमाला पटना	1935
दिमागी गुलामी	किताब महल, इलाहाबाद	1937
क्या करें ?	किताब महल, इलाहाबाद	1937
तुम्हारी क्षय	किताब महल, इलाहाबाद	1939
आज की समस्याएँ	किताब महल, इलाहाबाद	1944
आज की राजनीति	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	1949
भागो नहीं, दुनिया को बदलो	किताब महल, इलाहाबाद	1944
कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं	राहुल प्रकाशन, मसूरी	1953
रामराज्य और मार्क्सवाद	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	1956

सोवियत न्याय	वाणी मन्दिर, छपरा	1980

विज्ञान, दर्शन

विश्व की रूपरेखा	किताब महल, इलाहाबाद	1942
मानव-समाज	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता	1951
मानव की कहानी (जया-जेता का पत्र)	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	1968
दर्शन दिग्दर्शन	किताब महल, इलाहाबाद	1942
वैज्ञानिक भौतिकवाद	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता	1942

पुरातत्त्व

पुरातत्त्व निबंधावली	इंडियन प्रेस, इलाहाबाद	1937
आजमगढ की पुराकथा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद	1957
बौद्ध धर्म, संस्कृति तथा इस्लाम धर्म (लेखन, अनुवाद, संपादन)	महाबोधि सभा, बुद्धचर्या सारनाथ	1931
बौद्ध संस्कृति	आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता	1952
बौद्ध दर्शन	किताब महल, इलाहाबाद	1942

महामानव बुद्ध	बुद्धविहार, लखनऊ	1956
तिब्बत में बौद्ध धर्म	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद	1933
पाँच बौद्ध दार्शनिक	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	1994
इस्लाम धर्म की रूपरेखा	किताब महल, इलाहाबाद	1957
नवदीक्षित बौद्ध	बुद्ध विहार, लखनऊ	1957
धम्मपद (पालि-संस्कृत-हिन्दी)	बुद्ध विहार, लखनऊ	1933
मज्झिम निकाय (अनु.)	महाबोधि सोसाइटी, लखनऊ	1933
दीघ निकाय (अनु.)	महाबोधि सोसाइटी, लखनऊ	1936
विनय पिटक (अनु.)	महाबोधि सोसाइटी, लखनऊ	1933
श्रावस्ती जेतवन (अनु.)	बुद्ध विहार, लखनऊ	1956
थेरी गाथा (सं.)	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	1937
इतिवुत्तक (सं.)	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	1936
उदान (सं.)	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	1937
खुद्दक पाठ (सं.)	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	1937
चरियापिटक (सं.)	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	1937

प्रमाणवार्तिक (अनु. एवं.सं.)	जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना	——
प्रमाणवार्तिक भाष्य	जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना	1948
प्रमाणवार्तिक वृत्ति	बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना	——
वाद-न्याय	बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना	——
प्रमाणवार्तिक स्ववृत्ति	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	———
संबंध परीक्षा	जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना	——
अम्बट्ठ सुत्त (अनु.)	महाबोधि सभा	——
दीर्घागमस्य सूत्रद्वयम (अनु.)	बुद्ध विहार, लखनऊ	1957
अध्यर्द्धशतक	बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना	1935
विग्रहव्यावर्तनी	——	———
वार्तिकालंकार	बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना	1936
हेतुबिन्दु	बिहार रिसर्च सोसाइटी, बडौदा	1944
विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि	बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना	1936
विनयसूत्र	भारतीय विद्या भवन, बंबई	1943

निदान-परीक्षा	बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना	1951
सूत्र-कृतांग (अनु.)	जैन साहित्य प्रकाशन, गुडगाँव, हरियाणा	1961
महापरिनिर्वाण-सूत्र	बुद्ध विहार, लखनऊ	1951

इतिहास

मध्य एशिया का इतिहास (दो भाग)	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना	1952
ऋग्वेदिक आर्य	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	1937
अकबर	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	1956
भारत में अंग्रेज़ी राज के संस्थापक (अनु.)	करेंट प्रकाशन, कानपुर	1956
सोवियत शासन की इतिहास (प्रथम भाग)	नया हिंदुस्तान प्रेस, इलाहाबाद	अनुपलब्ध
सोवियत शासन का इतिहास (द्वितीय भाग)	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	अनुपलब्ध

आलोचनात्मक साहित्य

साहित्यिक निबंधावली	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	1949
राहुल निबंधावली	पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	1970
घुमक्कड़शास्त्र	राजकमलप्रकाशन नई दिल्ली	1949
हिन्दी काव्यधारा (अपभ्रंश)	प्रकाशक : उत्तम भिक्खुना	1945

आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना	1950
दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना	1950
सरहपाद : दोहाकोष (हिन्दी में छायानुवाद सहित)	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना	1957
पालि साहित्य का इतिहास	सूचना विभाग, हिन्दी समिति, लखनऊ	1963
तुलसी रामायण (संक्षेप)	अप्रकाशित	———
पालि काव्य धारा	अप्रकाशित	———
संस्कृत काव्य धारा	किताब महल, इलाहाबाद	1958

कोश

शासन शब्द कोश	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद	1948
राष्ट्रभाषा कोश (सं.)	राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा	1951
तिब्बती-हिन्दी कोश	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली	1961
तिब्बती संस्कृत कोश	अप्रकाशित	

तिब्बती शिक्षा से सम्बद्ध

तिब्बती बालशिक्षा	महाबोधि सभा, सारनाथ	1933

तिब्बती पाठावली भाग - 1, 2, 3	यंगमैन एसोसिएशन, लद्दाख	1933
तिब्बती व्याकरण	महाबोधि सभा, सारनाथ	1933

परिशिष्ट - ख

राहुल सांकृत्यायन को प्राप्त सम्मान एवं उपाधियाँ *

महापंडित	: काशी पंडित सभा
त्रिपिटकाचार्य	: श्रीलंका विद्यालंकार परिवेण
साहित्य वाचस्पति	: हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
डी.लिट्.(मानद)	: भागलपुर विश्वविद्यालय
डी.लिट् (मानद)	: श्रीलंका विद्यालंकार परिवेण
पद्म-भूषण	: भारत सरकार

* डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य कृत 'महापंड़ित राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्वांतरण की प्रक्रिया' से।

परिशिष्ट - ग

राहुल सांकृत्यायन द्वारा पटना संग्रहालय को प्रदत्त सामग्री *

सामग्री

थंका चित्र

ब्लॉक प्रिन्ट्स

मृत्तिका आकृतियाँ

कांस्य मूर्तियाँ

चित्र

चित्रकारी करने की वस्तुएँ

चंदन की लकडी पर उत्कीर्ण मन्दिर

ब्लॉक

काष्ठ की बौद्ध प्रतिमाएँ

तिब्बती पूजा के उपकरण

तिब्बती दैनिक जीवन से संबंधित वस्तुएँ

उत्कीर्णित पाषाण

मृत्तिका ठप्पा (सील)

पाण्डुलिपि : दसवीं शताब्दी

'प्रज्ञापारमिता' की पाण्डुलिपि

मैथिली पाण्डुलिपियाँ

* डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य कृत 'महापंड़ित राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्वांतरण की प्रक्रिया' से।

परिशिष्ट - घ

राहुल जी पर एक दुर्लभ कविता *

राहुल का खून पुकार रहा

प्रोफेसर श्री मनोरंजन

राहुल के सिर से खून गिरे
फिर क्यों यह खून उबल न उठे ?
साधू के शोणित से फिर क्यों
सोने की लंका जल न उठे ?
धक धक धक धक धधक धधक
उठ जाग री ! महा-क्रोन्ति बाले,
हैं निकल पडे अन्यायी के
चम चम चम चम बछी भाले;
उठ कृषकों के अभिमान, जाग !
उठ, दलितों के बलिदान, जाग !
उठ, महाक्रान्ति के प्राण, जाग !
उठ रे मजदूर किसान जाग !
अब दिन लद गये सलामी के,
अवसर न रहे भूस्वामी के,

* डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य कृत 'महापंड़ित राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्वांतरण की प्रक्रिया' से।

वे भी मनुष्य हम भी मनुष्य,
हम कायल नहीं गुलामी के !
हो चुकी बहुत कुछ मनमानी,
हम ने भी मरने को ठानी
हम पीछे पग न हटाएँगे,
दानाई हो वा नादानी
हम अपने स्वत्व न छोडेंगे,
पीछे न कभी मुख मोडेंगे
हम अन्यायी कानूनों के
अन्यायी बन्धन तोडेंगे
जो फसल खेत में छाई बै,
मेरी बस वही कमाई है,
आलसी, निकम्मे, सावधान,
श्रमिकों की बारी आई है
फिर कौन हमें जो डांटेगा ?
जो बोयेगा वह काटेगा,
जो सोयेगा वह खोयेगा,
वह बूँद ओस के चाटेगा
राहुल का खून पुकार रहा,
बढने को हमें प्रचार रहा,
वह विश्वविदित विद्वान आज
हँसिया लेकर ललकार रहा।
हावें अन्यायी, सावधान,
वे कुटिल कसाई, सावधान,

लो जेलों की दीवारों से भी

प्रतिध्वनि आई सावधान !

(यह कविता सन् 1939 ई. में अमवारी किसान सत्याग्रह में राहुलजी के सिर पर लगे चोट के विरोध में श्री मनोरंजन द्वारा रचित है।)

सहायक ग्रन्थ-सूची

मौलिक ग्रन्थ

1. मेरी लद्दाख यात्रा — राहुल सांकृत्यायन, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम संस्करण - 1939.

2. लंका — राहुल सांकृत्यायन, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, प्रथम संस्करण - 1935.

3. तिब्बत में सवा वर्ष — राहुल सांकृत्यायन, शारदा, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1933.

4. मेरी यूरोप यात्रा — राहुल सांकृत्यायन, साहित्य-सेवक-संघ, छपरा, प्रथम संस्करण - 1935.

5. जापान — राहुल सांकृत्यायन, लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1935.

6. मेरी तिब्बत यात्रा
राहुल सांकृत्यायन
छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग
प्रथम संस्करण - 1937.

7. यात्रा के पन्ने
राहुल सांकृत्यायन
साहित्य सदन
देहरादून
प्रथम संस्करण - 1952.

8. एशिया के दुर्गम भूखण्डों में
राहुल सांकृत्यायन
नवभारती प्रकाशन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1956.

9. इरान
राहुल सांकृत्यायन
इंडियन प्रेस
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1937.

10. सोवियत भूमि
राहुल सांकृत्यायन
नागरी प्रचारणी सभा
काशी
प्रथम संस्करण - 1939.

11. सोवियत मध्य एशिया
राहुल सांकृत्यायन
किताब महल
इलाहाबाद - 2005.
प्रथम संस्करण - 1947.

12. रूस में पच्चीस मास
राहुल सांकृत्यायन
आलोक प्रकाशन
बीकानेर
प्रथम संस्करण - 1952.

13. किन्नर देश में
राहुल सांकृत्यायन
किताब महल
इलाहाबाद - 2002.
प्रथम संस्करण - 1948.

14. दोर्जेलिङ् - परिचय
राहुल सांकृत्यायन
आधुनिक पुस्तक भवन
कलकत्ता
प्रथम संस्करण - 1950.

15. गढ़वाल
राहुल सांकृत्यायन
लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1953.

16. जौनसार देहरादून
राहुल सांकृत्यायन
विद्यार्थी ग्रंथागार
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1955.

17. कुमाऊँ
राहुल सांकृत्यायन
ज्ञानमंडल लिमिटेड
वाराणसी
प्रथम संस्करण - 1956.

18. हिमाचल - दो भाग
राहुल सांकृत्यायन
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1994.

19. चीन में क्या देखा
राहुल सांकृत्यायन
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण -1959.

20. चीन के कम्यून
राहुल सांकृत्यायन
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1959.

21. देश-विदेश
रामधारी सिंह दिनकर
उदयाचल
पटना

22. खंडित यात्राएँ
कमलेश्वर
शब्दकार
दिल्ली, 1976.
प्रथम संस्करण - 1975.

23. हमसफर मिलते रहे
विष्णु प्रभाकर
कादम्बरी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1996.

24. राह बीती
यशपाल
विप्लव कार्यालय
लखनऊ - 1956.

25. कुछ अटके, कुछ भटके
मृदुला गर्ग
यात्रा बुक्स
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2006.

26. हिमालय की यात्राएँ
राम नाथ पसरीचा
नेशनल बुक ट्रस्ट
इंडिया - 2008.
प्रथम संस्करण - 2007.

27. तिब्बत में बौद्ध धर्म
राहुल सांकृत्यायन
किताब महल
इलाहाबाद - 2005.
प्रथम संस्करण - 1948.

आलोचनात्मक ग्रंथ

1. हिन्दी का स्वातंत्र्यप्राप्त्युत्तर यात्रा साहित्य
डॉ.इरेश सदाशिव स्वामी
अन्नपूर्णा प्रकाशन
कानपूर
प्रथम संस्करण - 1992.

2. हिन्दी का यात्रा साहित्य (सन् 1960 से 1990 तक)
डॉ.रेखा प्रवीण उप्रेती
हिन्दी बुक सेंटर
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2000.

3. यात्रा साहित्य का उद्‌भव और विकास
डॉ.सुरेन्द्र माथुर
साहित्य प्रकाशन
दिल्ली - 1962.

4. महापण्ड़ित राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य
डॉ.रावेल चन्द आनन्द
शारदा प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1973.

5. महापंड़ित राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्वांतरण की प्रक्रिया
डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य
आनंद प्रकाशन
कोलकाता
प्रथम संस्करण -2005.

6. मनन और मूल्यांकन
डॉ.विश्वंभरनाथ उपाध्याय
आराधना ब्रदर्स
कानपुर
प्रथम संस्करण - 1994.

7. राहुलजी का जीवनी -यात्रा - साहित्य
जनकदुलारी सहगल
चिल्ड्रनबुक सोसाइटी
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण -1973

8. हिन्दी और नेपाली साहित्य के प्रतिनिधि हस्ताक्षर
डॉ. उषा ठाकुर
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1998.

9. सहचिन्तन
अमृतराय
सर्जना प्रकाशन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण -1967.

10. गद्य की विविध विधायें
(सं.)प्रो.डा.बापूराव देसाई
विनय प्रकाशन
कानपुर
प्रथम संस्करण - 1995.

11. हिन्दी वाङ्मय.. बीसवीं शती
(सं.) डॉ.नगेन्द्र
विनोद पुस्तक मन्दिर
आगरा
प्रथम संस्करण - 1972.

12. गद्य के विविध रूप
(सं.)डॉ.माजदा असद
ग्रन्थ अकादमी
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1990.

13. हिन्दी का आधुनिक यात्रा साहित्य
डॉ. प्रतापपाल शर्मा
अमर प्रकाशन
मथुरा
प्रथम संस्करण - 2003.

14. स्वयंभू महापंड़ित
गुणाकर मुले
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1993.

15. राहुल सांकृत्यायन..घुमक्कड़ शास्त्र और यात्रावृत्त
डॉ.जानकी पांडेय
ज्ञान भारती
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2001.

16. राहुल को हिमाचल का प्रणाम
(सं.)जगदीश शर्मा
सत्साहित्य भण्डार
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1996.

17. हिन्दी यात्रा-साहित्य : स्वरूप और विकास
डॉ.मुरारीलाल शर्मा
क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2003.

18. महामानव महापण्डित
कमला सांकृत्यायन
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली - 1997.
प्रथम संस्करण - 1995.

19. लोक संस्कृति
वसन्त निरगुणे
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल - 1997.
प्रथम संस्करण - 1996.

20. यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास
डॉ. बापूराव देसाई
विकास प्रकाशन
कानपुर
प्रथम संस्करण - 2005.

21. राहुल चयनिका
(सं.) डॉ.विद्यानिवास मिश्र
नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1993.

22. राहुल वाङ्मय - खण्ड 1
डॉ.कमला सांकृत्यायन
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट
लिमिटेड, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1994.

23. गद्य के प्रतिमान
विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1996.

24. दृश्यालेख
नन्दकिशोर नवल
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण -1995.

25. राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य
डॉ.सुदेश धाम
निर्माण प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1987.

26. राहुल सांकृत्यायन : सृजन और संघर्ष
उर्मिलेश
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1994.

27. महापण्ड़ित राहुल
(सं.)कमला प्रसाद
परिमल प्रकाशन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1994.

28. हिमाचल की लोक कथाएँ और आस्थाएँ
मौलू राम ठाकुर
नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2008.

29. राहुल सांकृत्यायन
डॉ. कन्हैया सिंह
अतुल प्रकाशन
कानपुर
संस्करण - 1994.

30. समकालीन यात्रा-वृत्तों में सांस्कृतिक सन्दर्भ
डॉ. हरि सिमरन कौर भुल्लर
के.के. पब्लिकेशन्स
दरियागंज, दिल्ली
प्रथम संस्करण - 2009.

31. घुमक्कड़शास्त्र
राहुल सांकृत्यायन
किताब महल
इलाहाबाद-2004.
प्रथम संस्करण - 1948.

कोश - ग्रन्थ

1. मुहावरा कोश
(सं.) डॉ.बदरीनाथ कपूर
लोकभारती प्रकाशन
महात्मागाँधी रोड
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1989.

2. लोकोक्ति केश
(सं.) हरिवंशराय शर्मा
राजपाल एण्ड सन्स
कश्मीरी गेट
प्रथम संस्करण - 1997.

3. भारतीय संस्कृति कोश	(सं.) लीलाधर शर्मा पर्वतीय राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली प्रथम संस्करण
4. हिन्दी विश्वकोश (18 वां भाग)	श्री नगेन्द्रनाथ बसु सं.1929, कोलकत्ता
5. बृहत् हिन्दी कोश	(सं.) कालिकाप्रसाद राजवल्लभ मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव तृतीय संस्करण-संवत् 2020.
6. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 और भाग 2	ज्ञानमण्डल लिमिटड वाराणसी तृतीय संस्करण - 1985.

पत्रिकाएँ

1. दस्तावेज़ : अप्रैल-जून 1996.
2. भाषा : यायावर साहित्य विशेषांक - मई-जून 2006.
3. भाषा : जुलाई - अगस्त 2009.
4. समकालीन सृजन : राहुल सांकृत्यायन अन्तर्विरोधों में लय - 1993.
5. सम्मेलन पत्रिका : राहुल सांकृत्यायन विशेषांक - 1993.
6. संग्रथन : मई 2009.
7. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : राहुल सांकृत्यायन जन्मशती विशेषांक, 30 अगस्त -5 सितम्बर - 1992.
8. गगनाञ्चल : जनवरी-मार्च, 2009.

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

1. Mahapanditha Rahula Sankrityayana -Birth Centenary Volume	(Ed.) Hemendu Bekash Chowdhary Banddha Dharmankur Sabha, Calcutta. First Edition - 1994.
2. Birth Centenary tribute to Mahapanditha Rahula Sankrityayana	(Ed.) Alaka Chattopadhyaya Manisa Publications First Edition - 1994.
3. China	Sreemati Chakrakarati National Book Trust, India First Edition - 2007.
4. Rahul Sankrityayan	Prabhakar Machwe Sahitya Akademi New Delhi - 1998 First Published - 1978.

रम्या.के.आर

मूशाप्पिल्लिल हाउस
वलयनचिरङ्रा पी.ओ.
पेरुम्बावुर.

श्रीमती. रम्या.के.आर का जन्म 17 फरवरी 1985 ई. में एरणाकुलम जिले के ऐरापुरम गॉव में हुआ। प्रारंभिक स्कूली शिक्षा हायर सेकन्टरी स्कूल वलयनचिरङ्रा तथा सेंट थोमस हायर सेकन्टरी स्कूल, कीषिल्लम में संपन्न हुई। उसके बाद सन् 2005 ई. में महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय के अधीनस्थ श्रीशंङ्करा विद्यापीठम कॉलेज वलयनचिरङ्रा से प्रथम श्रेणी तथा चौथे स्थान (IVth Rank) के साथ बी.ए (हिन्दी) की उपाधि प्राप्त हुई। सन् 2007 ई. में कोच्चिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय से एम.ए (हिन्दी) की उपाधि प्रथम श्रेणी तथा दूसरे स्थान (IInd Rank) के साथ प्राप्त हुई। तदनन्तर इसी विश्वविद्यालय में डॉ.एन.जी.देवकीजी के निर्देशन में सन् 2007 सितम्बर में शोध कार्य प्रारंभ किया। इसी विश्वविद्यालय से सन् 2008 ई. में पोस्ट ग्राजुएट डिप्लोमा इन ट्रान्स्लेशन एण्ड फंक्शनल हिन्दी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई। "हिन्दी का यात्रा साहित्य - राहुल सांकृत्यायन के विशेष सन्दर्भ में" शीर्षक यह शोध प्रबन्ध अब पीएच. डी उपाधि हेतु प्रस्तुत कर रही हूँ।